सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 44, अंक : 5
अगस्त : 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई 283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभं पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:।।

(गीता 8/14)

जो पुरुष अनन्यचित्त होकर नित्य-निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस नित्य मुझ में लगे हुए योगी को मैं सहज में ही प्राप्त हो जाता हूँ।

• • •

जितात्मन: प्रशान्तस्य परमात्मा समाहित:।
शीतोष्णसुखदु: खेषु तथा मानापमान यो:।।

अर्थात् अपमान में जिसके अन्त:करण की वृत्तियाँ भली भाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक प्रकार से स्थित है अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।

• • •

मालयदीदं परिदृश्यते जगन्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावित शुद्धमानस: सुखी भवानन्दमयो निरामय:।।

(अध्यात्म रामायण 7/5/60)

भाई ! यह जो कुछ जगत् दिखाई देता है, वह सब माया है। इसे अपने चित्त से निकालकर मेरी भावना से शुद्धचित्त और सुखी होकर आनन्दपूर्ण और क्लेशशून्य हो जाओ।

• • •

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पचसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स पर: कवि:।।

(विदुरनीति 1/105)

जो विद्वान पुरुष (आँख-कान आदि) नौ दरवाजे वाले, तीन (वात-पित्त-कफ रूपी) खम्भो वाले, पाँच (ज्ञानेन्द्रिय) साक्षी वाले आत्मा के निवास स्थान इस शरीर रूपी गृह को जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

• • •

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 5

मह्यं यजन्तां ममयानीष्टाकूतिः
सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु।।

मेरे प्राप्त करने योग्य इष्ट-कर्म ही मुझको प्राप्त हों, मेरे मन में सत्य-संकल्प ही हों, मैं कभी भी कोई पाप कर्म न करूँ, सब उत्तमगुण और शुभ कर्म करूँ, ईश्वर मेरी रक्षा करे।

अगस्त 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	महाभारत एवं योगेश्वर श्री कृष्ण – रामकुमार गोस्वामी	10
4.	जीवन का परम आनन्दयोग – जगमोहन सक्सैना	15
5.	बैकुण्ठ धाम के दर्शन	17
6.	शिव परिवार लोक हिताय – डॉ. जे.पी. शर्मा	19
7.	श्रीमद्भागवतगीता का विभिन्न महात्म्य – बलवीर सिंह	25
8.	गुन्जन सिंह – डॉ. विजय सिंह	28
9.	एकांशेन स्थितो जगत – कृष्ण कुमार पाण्डेय	31
10.	ब्रह्म का स्वरूप – जनक कुलश्रेष्ठ	33
11.	श्री गीतामृत पदावली	37

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

• *हमारा विशेष लेख*

योगियों के विविध संयम एवं उनके विविध फल

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

भगवान पतंजलिदेव विविध प्रकार के संयमों के भेद बतलाते हैं। उन-उन विषयों में संयम करने से योगी को विविध प्रकार के ज्ञान की अनुभूति होती रहती है। भगवान पतंजलिदेव ताराव्यूह के ज्ञान का प्रकार बतलाते हैं।

चन्द्रे ताराव्यूह ज्ञानम्॥

अर्थात्-चन्द्रबिम्ब में संयम करने से योगी को ताराव्यूह का अपने आप ही ज्ञान हो जाता है। समाधि का प्रकार वही है जैसा कि हम पहले समझा चुके हैं। इस सूत्र पर व्यासभाष्य-

चन्द्रे संयमं कृत्वा ताराव्यूहं विजानीयात्।

अर्थात्-चन्द्रमा में संयम करके ताराव्यूह की रचना को योगिराज प्रत्यक्ष करें। इस संयम के संकल्प में योगी जब अपना यह संकल्प रखेगा कि-मैं चन्द्रबिम्ब से सम्बन्धित ताराव्यूह को जानूँ तो वह अवश्य ही जान जायेगा।

तारागण की गति का ज्ञान

ध्रुवे तद्गति ज्ञानम्।

ततो ध्रुवे संयमं कृत्वा, ताराणां गतिं जानीयाद् ऊर्ध्व विमानेषु कृतसंयमस्तानि विजानीयाद्॥

अर्थात्-ध्रुव तारे में संयम करने से योगी तारागण की गति को जान लेता है। क्योंकि-ध्रुव अटल है, सुस्थिर है। गति रहित स्थिर वस्तु पर संयम करने से उसके आसपास के गतिमान तारागणों का ज्ञान तो हो ही सकता है। इसी प्रकार से जैसे ध्रुव में संयम करने से तारागण की गति का ज्ञान होता है, उसी प्रकार से तारागण के ऊर्ध्व विमान आदि में संयम करने से उसका ज्ञान भी योगी को स्वाभाविक ही हो जाता है।

काया व्यूह का ज्ञान

शरीर भी एक अण्ड का रूप है। अनुभवी लोगों ने शरीर के अन्दर नदी, नाले, पहाड़ और समुद्र सभी को जाना है। अतः मनुष्य के शरीर को भी एक व्यूह रचना का ही रूपक माना गया है। इस कायारूपी व्यूह का ज्ञान प्राप्त करने के लिए योगी को कहीं न कहीं संयम करने की आवश्यकता है ही। नाभिमण्डल ही एक ऐसा स्थान है जहाँ शरीर भर की नाड़ी समूह का एक

अधिष्ठान है। अतः भगवान पतंजलिदेव ने निम्नांकित सूत्र में नाभिचक्र में संयम करने से कायाव्यूह के ज्ञान की सूचना इस प्रकार दी है–

नाभिचक्रे कायाव्यूह ज्ञानम्।

व्यास भाष्य–

नाभिचक्रे संयमं कृत्वा कायाव्यूहं विजानीयाद्, वात पित्तश्लेष्माणस्त्रयो दोषाः। धातवः सप्त त्वग्लोहित मांस–स्नायु अस्थिमज्जा शुक्राणि, पूर्व पूर्वमेषां बाह्यमित्येष विन्यासः।

अर्थात्–नाभिचक्र में संयम करने पर योगी को कायाव्यूह का ज्ञान होता है। कायाव्यूह में वात, पित्त, कफ आदि तीन प्रकार के दोष हैं और सात धातुएँ हैं, इसमें त्वचा अर्थात् चमड़ी, रक्त अर्थात् रुधिर, मांस, स्नायु अर्थात् नाड़ियाँ, हड्डी, मज्जा और शुक्र ये सब पहले बताये प्रकरण की अपेक्षा बाह्यरूप से माने गये हैं। जिस प्रकार से सूर्यद्वार में संयम करने से योगी को सारे भुवन का ज्ञान हो जाता है इसी प्रकार से नाभि मण्डल में संयम करने से शरीर की सारी रचना का ज्ञान योगी को हो जाया करता है, क्योंकि–शरीर आधार भूत वात, पित्त, कफ आदि दोष और सप्त धातुएँ हैं। इनको पूर्णरूपेण जान लेने पर इससे सम्बन्धित अन्य शरीर रचना को भी भली प्रकार से जाना जा सकता है। अब इससे आगे भगवान पतंजलिदेव एक और विषय का वर्णन करते हैं और वह विषय है –

क्षुत्पिपासा निवृत्ति का उपाय

योगाभ्यासी योगी के रास्ते में जिस प्रकार अन्य व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमादादि अन्तराय हैं उसी प्रकार से भूख और प्यास भी साधक के रास्ते में एक बहुत बड़ा अन्तराय है। साधक ज्यों–ज्यों अभ्यास में बैठेगा त्यों–त्यों उसे भूख और प्यास सताती रहेगी। फलस्वरूप वह अपने अभ्यास को छोड़ बैठेगा और यह लोकोक्ति चरितार्थ हो जायेगी कि –

भूखे भगति न होय गोपाला, यह लो अपनी कंठी माला।।

इसी बात को मद्देनजर रखते हुए भगवान पतंजलि जी ने क्षुत्पिपासानिवृत्ति का भी एक उपाय बता दिया–

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः।

व्यासभाष्यः– **जिह्वाया अधस्तात् तन्तुः ततोऽधस्तात् कण्ठः, ततोऽधस्तात् कूपः तत्र संयमात् क्षुत्पिपासे न बाधेते।**

अर्थात्–कण्ठकूप में संयम करने से योगी की भूख व प्यास मिट जाती है। जिह्वा के नीचे के भाग में तन्तु है, तन्तु से नीचे कण्ठ है और कण्ठ के नीचे कण्ठकूप है। जब योगी कण्ठकूप में अपने मन को लगा करके संयमित स्थिर होकर समाधिस्थ बैठता है तब उसका क्षुत्पिपास जनित दुःख स्वतः ही शान्त हो जाता है और मन शान्त होकर सुस्थिरता की ओर जाने लगता है, किन्तु

स्थिरता का लाभ प्राप्त करने के लिये उसको एक विशेष प्रकार के संयम की आवश्यकता अनुभव में आने लगी। उसी को बतलाने के लिए भगवान पतंजलिदेव ने कूर्म नाड़ी का संकेत किया।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्।

व्यासभाष्य–**कूपादध उरसि कूर्माकारा नाडी, तस्यां कृतसंयमः स्थिरं पदं लभते यथा सर्पो गोधायेति।**

अर्थात्–कण्ठकूप के नीचे वक्षस्थल की तरफ कूर्म नाड़ी है। जब योगी उसमें संयम करता है तो उसके चित्त में स्वाभाविक स्थिरता आने लगती है। लोक में इस प्रकार के उदाहरण प्रसारित हैं। सर्प और गोध दोनों इस प्रकार के जीव हैं कि ये दोनों ही पत्थर के मानिंद जड़वत् होकर पड़े रहा करते हैं। इसी प्रकार योगी भी यदि कूर्म नाड़ी में संयम करता है तो सर्प व गोधा की तरह ही स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

सिद्ध–दर्शन का उपाय

मूर्धि–ज्योति में संयम करने से योगी को सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं। सिर में कपाल भाग के नीचे एक छिद्र है, उस छिद्र में बहुत ही देदीप्यमान भास्वरा ज्योति की स्थिति है। योगी अपने संयम के आधार पर यदि वहाँ मन को स्थिर करता है तो उसको पृथ्वी और आकाश के अन्तराल में विचरने वाले सिद्धों के दर्शन अपने आप ही होने लगते हैं। इस प्रकार के जो सिद्ध लोग हैं वे देव रूप माने जाते हैं।

सर्व ज्ञान का उपाय

संयम के आधार पर योगी सभी कुछ जान लेता है किन्तु फिर भी आत्मज्ञान की ओर बढ़ते हुए योगी को प्रातिभ नाम के एक ज्ञान का उदय होता है, उस ज्ञान के उदय हो जाने पर योगी सब कुछ जान लेने की ताकत वाला हो जाता है। भगवान पतंजलिदेव के शब्दों में पढ़िये–

प्रातिभाद्वा सर्वम्।

व्यासभाष्य–**प्रातिभं नाम तारकं तद्विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्व रूपं यथोदये प्रभा भास्करस्य तेन सर्वमेव जानाति योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति।**

अर्थात्–

प्रातिभ नाम का एक ज्ञान है। जिसको विवेक ज्ञान का पूर्व रूप कहना चाहिए। जैसे सूर्योदय से पहले सूर्य का धीमा–धीमा प्रकाश उषाकाल में हो जाया करता है जिसको हम लोग पौ फटना भी कहा करते हैं। इस पौ फटने पर जिस प्रकार सांसारिक मनुष्य उस धुँधुले प्रकाश में सभी कुछ देखने लग जाते हैं इसी प्रकार विवेक–ज्ञान से पूर्व इस प्रातिभ नाम के ज्ञान के उदय होने पर योगी उस आत्म तेज के प्रभाव से सभी कुछ जानने लग जाता है। दूसरों के मन में यदि कोई भाव गुजरता है तो योगी तत्काल जान लेता है कि–अमुक व्यक्ति यह सोच रहा है। अमुक

स्थान पर इस समय अमुक कार्य हो रहा है।

योगी को चित्त का ज्ञान

हृदये चित्तसंवित्।

व्यासभाष्य—यदिदमस्मिन ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म तत्र विज्ञानं तस्मिन् **संयमाच्चित्त संवित्।**

अर्थात्–हृदय में एक कमल है। वह परम विज्ञान का घर है। उसमें संयम करने से योगी को चित्त का ज्ञान हुआ करता है। संयम सिद्ध योगी अपने संयमित चित्त को मैं अमुक ज्ञान प्राप्त करके ही रहूँगा इस भावना को दृढ़ करके जो भी कुछ जानना चाहता है, वह तत्काल जान जाता है। चित्त की कोई आकृति नहीं, किन्तु जब योगी जानना चाहता है कि मैं चित्त को जानूं और इसी भावना को लेकर वह समाधिस्थ हो जाता है तो उस सर्वव्यापक अन्तर्यामी परम् गुरु परमात्मा की कृपा से उसको शुभ प्रेरणा मिल जाती है एवं वह उस वस्तु तत्व को जान लेता है। योग में संयम योगियों की एक अनुपम निधि है। संयम प्राप्त करना ही कुछ कठिन है। एक योगी अपने अभ्यास के बल से जहाँ–जहाँ अपने संयमित चित्त को लगायेगा उस ज्ञान विशेष को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा। अतः प्रत्येक पाठक को चाहिए कि योग की इस अमर निधि को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न में लग जाये। यह न समझे कि—मैं इस गूढ़ विषय को कैसे जान सकूँगा, कैसे पा सकूँगा?

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।

एक–एक बूँद पानी के भरने से घड़ा पूरा भर जाया करता है। अतः जो उद्यमी लोग पूर्ण पुरुषार्थ के साथ इस अन्तर निधि को प्राप्त करने के प्रयत्न में लग जायेंगे वे अवश्य ही पा लेंगे एवं अपने मनुष्य [illegible]वन को सफल बना लेंगे।

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते।।

(विदुर नीति)

अधर्म से प्राप्त हुए धन के द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं, उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है।

पावन गुरु पूर्णिमा पर्व

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

इस वर्ष गुरु पूर्णिमा का पर्व 15 जुलाई को बड़े धूम धाम से मनाया गया। इसे व्यास पूर्णिमा या व्यास पूजा के नाम से भी जाना जाता है। 'गुरु' शब्द संस्कृत के 'गृ' निगरणे तथा 'गृ' शब्दे इन दो धातुओं से व्युत्पन्न होता है। गृणाति उपदिशति धर्मम् इति गुरुः, जो अपने शिष्यों को धर्म एवं योग का उपदेश करे वह गुरु है।

''गिरत्यज्ञानमिति गुरु'' जो शिष्य के मन–बुद्धि में व्याप्त अज्ञान का हरण करे वह गुरु है।

गुरु गीता में भगवान् सदाशिव के शब्दों में –

गुशब्दस्त्वन्धकारोऽस्ति रुशब्दस्तन्निरोधकः
अंधकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात् गु अन्धकार का वाचक है और रु शब्द प्रकाश का बोधक है इस प्रकार से जो अन्धकार को दूर करके शिष्य के हृदय में प्रकाश कर दे वह गुरु कहलाता है। ''गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वादिभिरिति गुरुः,'' जिनकी देवता, गन्धर्व, ऋषि मुनि नित्य पूजा करते हैं वह गुरु है।

भारतीय संस्कृति में अनादिकाल से ही गुरु पूजन की परम्परा चली आ रही है। अतः शिष्य अपने गुरु के आश्रम में आकर गुरु पूजन अर्चन करते हैं। परात्पर ब्रह्म ही गुरु शब्द का वाचक है। योग दर्शन में भगवान् पतंजलि देव जी लिखते हैं – सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' अर्थात् वह ईश्वर सर्वप्रथम प्रकट होने वाले देवों का भी गुरु है। इनकी आज्ञा से ही सृष्टि के सभी कार्य होते हैं। वही ब्रह्मादि देवों को तप करने की आज्ञा देते हैं और आगे सृष्टि विस्तार की आज्ञा देते है। गुरु तत्व अनादि है, परात्पर है, सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। वह परात्पर सत्ता ही शिव, कृष्ण आदि के रूप में समय–समय पर व्यक्त रहती है। वे ही अधिकारी भक्तों को योगविद्या के अमर ज्ञान को देने के लिए मत्स्येन्द्रनाथ, महाप्रभु योगेश्वर रामलाल जी महाराज के रूप में आविर्भूत होते हैं। गुरु तत्व ही समय–समय पर नाना रूपों में प्रकट होता है। आनन्दकंद महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के समय में एक उत्कृष्ट ध्यानी ने ध्यान योग से देखा कि ब्रह्मादि सभी देव महाप्रभु जी की वन्दना कर रहे हैं। ध्यान से उठने के बाद अपना अनुभव श्री प्रभु जी को बतलाया तो प्रभु जी ने कहा वे इस शरीर (अपनी ओर इशारा करके) की पूजा नहीं कर रहे थे वे उसकी (ऊपर की ओर इशारा करके) पूजा कर रहे थे। हमारे देश के योगियों, ऋषियों एवं मनीषियों ने सदा से ही सद्गुरु की महिमा का गान किया है। सन्त कबीर जैसे निर्गुण ब्रह्मवादी योगी ने गुरु की महिमा का मुक्त कण्ठ से गुणगान

किया है वे कहते हैं—

सद्गुरु की महिमा अनन्त, अनन्त कियो उपकार।

ऐसे ही किसी गुरुभक्त ने लिखा है—

माता से हरि सौ गुना, हरि से गुरु सौ बार।

अर्थात् पिता से माता सौ गुना प्यार करती है, माता से भी ज्यादा हरि प्रेम करते हैं। किंतु हरि से भी सौ गुणा प्यार गुरुदेव करते हैं। मनुष्य के भौतिक शरीर के दाता तो माता–पिता होते हैं किंतु अध्यात्म शरीर के जनक गुरुदेव होते हैं। इसी देह से मनुष्य भव सागर से पार हो सकता है। गुरुगीता में भगवती पार्वती को उपदेश देते हुए भगवान् सदाशिव कहते हैं—

गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि भावयेत्।

यदि मनुष्य सभी बन्धनों से मुक्त होना चाहता है तो उसे गुरुदेव का कभी लोप अर्थात् विस्मरण नहीं करना चाहिए। जब तक शरीर है सिद्धि प्राप्ति के पश्चात् भी गुरुदेव की आराधना करनी चाहिए। अर्थात् शिष्य अन्तिम श्वास तक गुरुदेव की महानता व उपकार का गुणगान करता रहे। गुरुदेव की कृपा से ही शिष्य को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

सन्त शिरोमणि तुलसीदास जी ने बहुत सुन्दर भाव व्यक्त किये हैं—

'श्री गुरुपद नखमणि गण ज्योति सुमिरत **दिव्य दृष्टि हिय होती।'** अर्थात् गुरुदेव के चरण कमल के नख से निकलने वाली ज्योति पुंज के स्मरण करने से शिष्य के हृदय में दिव्य दृष्टि प्रकट होती है जिस दृष्टि के प्राप्त हो जाने पर भक्त, भगवान एवं गुरु के वास्तविक स्वरुप का साक्षात्कार कर सकता है। गुरुदेव से प्राप्त विद्या या मन्त्र ही फलवती हुआ करती है। गुरुदेव अपने शिष्य को भोग अर्थात् सांसारिक सुख और योग अथवा मोक्ष देते हैं।

अन्तर्जगत के वे ही स्वामी होते हैं। सभी को सद्गुरु की प्राप्ति नहीं हो सकती। वेद शास्त्र में आया है— संसार के विषय भोगों में संलिप्त रहने वाले, ईश्वर तथा शास्त्र में विश्वास न रखने वाले, गुरुपूजा नहीं करने वाले, विविध मत मतान्तरों में व सांसारिकता में संलिप्त रहने वाले, जन समुदाय में रुचि रखने वाले, व्यर्थ के वाद–विवादों में पड़ने वाले, कठोर वाणी बोले वाले, गुरुदेव को संतुष्ट न रखने वाले साधक को योग मार्ग में कभी सफलता नहीं मिलती है। इसलिए एक योग्य शिष्य को सदा गुरु आज्ञा में रहकर गुरु भक्ति करनी चाहिए।

'नास्ति तत्वं गुरोः परम्' गुरुदेव से परे या बढ़कर कोई तत्व नहीं है। अतः कल्याणकामी को सदा ही गुरु भक्ति करनी चाहिए। अस्तु।

इस वर्ष गुरुपूर्णिमा का पावन महोत्सव 15 जुलाई को बड़े ही धूम धाम से मनाया गया। वैसे तो यह उत्सव सभी आश्रमों में मनाया जाता है। किंतु अधिकतर साधक अपने मुख्य केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई में ही आते हैं। गुरु पूर्णिमा उत्सव के एक दिन बाद ही 17 जुलाई अर्थात् श्रावण कृष्णा द्वितीया से ही ग्यारह दिन तक श्री रुद्र महायज्ञ का अनुष्ठान चला जिसकी

पूर्णाहुति 27 जुलाई को हुई। इस यज्ञ के आचार्य के रूप में वेदाचार्य श्री वैकुण्ठ शर्मा अपने साथियों एवं शिष्यों के साथ आये और यह यज्ञ बड़े उल्लास एवं आनन्द के वातावरण में सम्पन्न हुआ। बाहर के आये डेढ़ – दो सौ साधक इस यज्ञ में सम्मिलित हुये। इस काल में साधक अपनी व्यक्तिगत साधना में मन्त्र–जाप एवं ध्यान योग का अभ्यास करते हैं ये लोग दरबार के सामने बैठते थे या फिर गुरुदेव के कक्ष में ध्यानरत देखे जा सकते थे। 27 जुलाई को यज्ञ की पूर्णाहुति के साथ ही अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। इस प्रकार से साधक धाम में आकर एक नई ऊर्जा युक्त होकर अपने घरों को वापिस गये। जिस स्थान पर ध्यानयोगी वास करता है वह स्थान पर पवित्र हो जाता है। ध्यानी व्यक्ति के मित्र, बन्धु–बांधवों का भी कल्याण हो जाता है।

"श्री राम लाल प्रभवे नमः"

एक निवेदन

पिछले नौ वर्षों से प्रकृति का प्रकोप मेरे शरीर में गैंगरीन जैसी घातक बीमारी के रूप में कहर बनकर टूट पड़ा। इससे निजात पाने के संघर्ष में मेरे परिवार ने सब कुछ गंवा दिया, डॉक्टरों–अस्पतालों की परिक्रमा करते–करते मेरे पूज्य पिताजी वर्ष 2005 में मुझे पूर्ण स्वस्थ देखने की इच्छा मन में ही लिये चल बसे। गैंगरीन पर कुछ नियंत्रण हुआ तो गुर्दो ने काम करना बंद कर दिया, इन दिनों सप्ताह में दो बार डायलिसिस की प्रक्रिया से गुजरना पड़ रहा है। जीवन रक्षा की इन कोशिशों ने मेरे परिवार को घोर संकट में डाल दिया। अब डॉक्टरों ने गुर्दा प्रत्यारोपण को अनिवार्य बता दिया है यह अत्यधिक महंगी प्रक्रिया है जिसे कर पाना अब वश के बाहर है अपने गुरु भाईयों से पीड़ा जताना लज्जाजनक नहीं होता इसलिए आपकी चौखट तक अपनी बात निःसंकोच लिख रहा हूँ। इस दिशा में अगर आप कुछ आर्थिक सहयोग कर सकें तो आभारी होऊँगा।

अखिलेश शुक्ल
ए–66, गोविन्दपुरी, यूनिवर्सिटी रोड, ग्वालियर
पिन– 474011, फोन : 0751–2340166
बैंक : इलाहाबाद बैंक
शाखा सिटी सेन्टर
खाता नं. : 20608158844

महाभारत एवं योगेश्वर श्री कृष्ण

— रामकुमार गोस्वामी
प्रधान न्यायाधीश कुटुम्ब न्यायालय, इंदौर म.प्र., मो. : 09425054704

योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण 16 कलाधारी ईश्वर के अवतार थे, उन्हें स्थान–स्थान पर योगेश्वर कहा गया है। श्री गुरुदेव भगवान बताया करते थे कि योग की महत्ता अन्य धार्मिक पंथों से श्रेष्ठ है और योग के जिज्ञासु भी कर्मकाण्ड के दायरे से ऊपर होते हैं। गुरुदेव भगवान योगेश्वर श्री कृष्ण की महत्ता भी बतलाया करते थे।

भगवान श्री कृष्ण को स्थान–स्थान पर योगेश्वर शब्द से संबोधित किया गया है। जब द्रोपदी का भरी सभा में अपमान हो रहा था और चीरहरण का प्रयास किया जा रहा था तब भी द्रोपदी ने भगवान श्री कृष्ण को योगेश्वर ही कहकर पुकारा था और भगवान श्री कृष्ण ने द्रोपदी की लाज बचायी थी। इसी प्रकार अर्जुन को युद्ध के समय मोह हो गया तो भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें गीता का ज्ञान दिया तब एकादश अध्याय में भी अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा कि :

हे प्रभो ! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है – ऐसा आप मानते हैं, तो हे योगेश्वर उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराईये।

इसी प्रकार गीता के 11वें अध्याय के 9वें श्लोक में संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि :

हे राजन! महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखलाया।

गीता के अंतिम श्लोक में भी संजय ने कहा कि :

हे राजन ! जहाँ योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव–धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री विजय, विभूति और अचल नीति है – ऐसा मेरा मत है।

इस प्रकार गीता शास्त्र से एवं अन्य शास्त्र से यह बात स्वयं सिद्ध होती है कि भगवान श्री कृष्ण योगेश्वर थे।

महाभारत युद्ध भी श्री कृष्ण की कृपा से ही पाण्डव जीत पाये थे अन्यथा कौरव सेना में पाण्डवों की 07 अक्षोहिणी सेना के मुकाबले 11 अक्षोहिणी सेना थी तथा पाण्डव सेना में महावीरों की संख्या कम थी जबकि कौरवों में भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण और अनेकानेक ऐसे महारथी थे जिनको पराजित करना संभव नहीं था। श्री कृष्ण की कृपा से ही पाण्डव विजय को प्राप्त हो सके, यह बात आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायेगी।

जब पाण्डव 12 वर्षों के वनवास में थे तो दुर्योधन ने उनको नष्ट करने के उद्देश्य से दुर्वासा ऋषि की सेवा की और उनसे वरदान प्राप्त किया कि वे 60 हजार शिष्यों के साथ

युधिष्ठिर का आथित्य ग्रहण करेंगे। दुर्योधन का उद्देश्य यह था कि पाण्डव लोग दुर्वासा ऋषि को 60 हजार शिष्यों के साथ भोजन नहीं करा सकेंगे और दुर्वासा ऋषि क्रोध में आकर पाण्डवों को श्राप दे देंगे जिससे पाण्डव नष्ट हो जावेंगे। जैसे ही दुर्वासा अपने 60 हजार शिष्यों के साथ जब युधिष्ठिर के यहां पहुँचे और युधिष्ठिर के यहां भोजन करने की इच्छा प्रकट की और स्नान करने चले गये – उस समय द्रोपदी भोजन कर चुकी थी और उनके पास जो अक्षय पात्र था उसमें से भी भोजन प्राप्त नहीं हो सकता था तब द्रोपदी ने भगवान श्री कृष्ण को आर्तस्वर में पुकारा तो भगवान श्री कृष्ण तत्काल वहाँ उपस्थित हो गये और उन्होंने भी द्रोपदी से कहा कि वे भूखे हैं तब द्रोपदी ने उनसे दुर्वासा ऋषि वाली सारी बात बतायी और द्रोपदी ने यह भी बताया कि वह भोजन कर चुकी है इसलिए अक्षयपात्र से भी कुछ भोजन प्राप्त नहीं होगा परंतु श्री कृष्ण भगवान ने आग्रह करके पात्र को बुलाया और उसमें लगे हुए छोटे से चावल को खाकर स्वयं तृप्त हो गये और संकल्प से दुर्वासा ऋषि तथा उनके 60 हजार शिष्यों को तृप्त कर दिया। जब दुर्वासा व उनके शिष्य स्नान करके निकले तो उन्होंने अपने आप को भोजन से संतुष्ट व भरा हुआ पेट पाया तब पाण्डवों की महत्ता को समझकर वे वहाँ से चले गये। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने पाण्डवों को घोर संकट से बचाया।

इसी प्रकार जब युद्ध आरंभ हो गया था और दोनों सेनाएँ आमने–सामने खड़ी हो गई थीं – अर्जुन के कहने पर भगवान श्री कृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा किया तो अर्जुन ने अपने पूज्यनीय भीष्मपितामह, गुरुद्रोणाचार्य एवं अन्य श्रद्धेय रिश्तेदार ताऊ, चाचा, दादा, परदादा, गुरुभ्राताओं आदि को देखा तो अर्जुन शोक करते हुए श्री कृष्ण भगवान से बोले कि वह युद्ध नहीं करेगा और उसके अंग शिथिल हुए जा रहे हैं, मुख सूखा जा रहा है तथा उसके शरीर से कंपन हो रहा है और हाथ से गाण्डीव गिर रहा है। **अर्जुन ने कहा कि वह अब राजसुख भोगना नहीं चाहता है और युद्ध नहीं करेगा, उस समय भगवान श्री कृष्ण ने कहा कि इस समय तुझे यह मोह किस हेतु प्राप्त हुआ है क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित है और न ही स्वर्ग को देने वाला है और न कीर्ति को करने वाला है,** तब दुर्बलता को छोड़कर युद्ध के लिए खड़ा हो। जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर दूसरा नया शरीर धारण कर लेती है। जन्म हुए मनुष्य की मृत्यु निश्चित है और मृत मनुष्य का जन्म निश्चित है। श्री कृष्ण भगवान ने यह भी उपदेश दिया कि या तो युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा या संग्राम जीतकर पृथ्वी पर राज भोगेगा, इस प्रकार तुम युद्ध करो और धर्म के विभिन्न सिद्धांतों का गूढ़ रहस्य भी समझाया जिसके परिणामस्वरूप अर्जुन युद्ध के लिए खड़ा हो गया। यदि अर्जुन युद्ध के लिए खड़ा नहीं होता तो पाण्डव युद्ध नहीं जीत सकते थे।

इसी प्रकार जब दस दिन का युद्ध हो चुका था, तब पाण्डवों के अनेक वीर सैनिक मारे जा चुके थे और भीष्मपितामह को इच्छा मृत्यु का वरदान था और वे पराजित नहीं हो रहे थे तब

विजय के लिए आयोजित सभा में श्री कृष्ण भगवान ने यह सलाह दी कि युधिष्ठिर भीष्मपितामह के पास जाए और उनकी मृत्यु का तरीका पूछें। श्री कृष्ण भगवान की सलाह पर युधिष्ठिर रात्रि में भीष्मपितामह के शिविर में गए और उनसे उनकी मृत्यु का तरीका पूछा। भीष्मपितामह ने बताया कि कोई महिला अगर सामने रथ पर हो और उसके पीछे से अर्जुन बाण चलाए तो भीष्मपितामह युद्ध नहीं करेंगे और शस्त्र रख देंगे तो अर्जुन आसानी से उनका वध कर सकते हैं। इसी सलाह पर काम करते हुए अर्जुन के रथ पर शिखण्डी सवार हुए और अर्जुन ने शिखण्डी के पीछे से बाण चलाकर भीष्मपितामह को बाणों की शैया पर सुला दिया और युद्ध के पश्चात् भीष्मपितामह ने अपनी देह त्यागी।

आगे के युद्ध में जब गुरु द्रोणाचार्य कौरव सेना के प्रधान सेनापति बने और अर्जुन के दूर होने पर गुरु द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की, इस युद्ध में अभिमन्यु मारा गया। अभिमन्यु जो कि अर्जुन का पुत्र था, अभिमन्यु की मृत्यु से दुखी होकर उसने यह प्रण किया कि अगले दिन की सहायता के लिए अन्य पाण्डव सेना के वीरों को आगे बढ़ने से रोकने का दोषी जयद्रथ का वध कर देगा और उसने यह भी प्रण किया कि यदि वह जयद्रथ का वध करने में असफल हुआ तो स्वयं अग्नि समाधि ले लेगा और अपनी देह त्याग देगा। अगले दिन के युद्ध में लगभग सायंकाल समय होने को था, अर्जुन जयद्रथ तक नहीं पहुँच पाया तो योगेश्वर श्रीकृष्ण ने सूर्य को बादलों में छिपा दिया और जब अर्जुन अग्नि समाधि लेने के लिए तैयार हुआ तो जयद्रथ यह दृश्य देखने के लिए बाहर निकल आया, वहीं श्रीकृष्ण भगवान के निर्देश पर अर्जुन ने जयद्रथ का वध कर दिया।

अर्जुन ने अमोघ बाण के द्वारा जयद्रथ का सिर काटकर जयद्रथ के सिर को उसके पिता की गोदी में रख दिया। उस समय जयद्रथ के पिता पूजन कर रहे थे, उन्होंने जयद्रथ के सिर को नीचे गिरा दिया और जयद्रथ के पिता का सिर फट गया। इस सम्बन्ध में भी श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन को निर्देश दिया था कि जयद्रथ का सिर जयद्रथ के पिता की गोदी में ही गिराना – यदि जयद्रथ का सिर जमीन पर गिर जाता तो अर्जुन के सिर के टुकड़े–टुकड़े हो जाते और अर्जुन की मृत्यु हो जाती क्योंकि जयद्रथ को उसके पिता से वरदान प्राप्त हुआ था कि जो जयद्रथ का सिर जमीन पर गिरायेगा उसके सिर के भी टुकड़े–टुकड़े हो जाएंगे। यदि श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को जयद्रथ के सिर को उसके पिता की गोदी में रखने का निर्देश नहीं देते और जयद्रथ का सिर जमीन पर गिर गया होता तो अर्जुन का सिर फट गया होता और अर्जुन की मृत्यु होने पर पाण्डव युद्ध हार जाते। इस प्रकार श्री कृष्ण भगवान ने जयद्रथ का वध कराकर अर्जुन के प्राण बचाए थे और महाभारत युद्ध में पाण्डव की विजय सुनिश्चित की थी।

आगे के युद्ध में जब गुरु द्रोणाचार्य पाण्डव सेना का संहार कर रहे थे और उस समय पाण्डव सेना का कोई भी वीर गुरु द्रोणाचार्य को युद्ध में नहीं हरा पा रहा था और उनका वध नहीं कर पा रहा था तो कृष्ण भगवान ने ही युधिष्ठिर को गुरु द्रोण की हत्या का उपाय बताकर

युधिष्ठिर से अश्वत्थामा मारा गया, ऐसा कहलाया और यह सुनकर गुरु द्रोण ने अपने अस्त्र त्याग दिए और द्रुपद के पुत्र ने गुरु द्रोण का सिर काटकर उनका वध कर दिया।

इस युद्ध में जब कर्ण के पास कवच और कुण्डल थे जो उसके जन्म से ही उसके शरीर के अंग थे, इन कवच कुण्डलों को इन्द्र ने मांग लिया था, उसके बदले में कर्ण ने इन्द्र से एक ऐसी शक्ति प्राप्त की थी जो कभी व्यर्थ नहीं जा सकती थी और इसका प्रयोग एक बार करके किसी भी योद्धा का वध किया जा सकता है। कर्ण ने यह शक्ति अर्जुन के लिए रखी थी और यदि इस शक्ति से अर्जुन का वध हो जाता तो पाण्डव युद्ध हार जाते, परंतु श्री कृष्ण भगवान ने भीम एवं हिडम्बा के पुत्र घटोत्कच को युद्ध में भेज दिया, जिसने युद्ध में कोहराम मचा दिया। दुर्योधन के ऊपर हार मण्डराने लगी और घटोत्कच के वध का उपाय कौरव सेना में किसी के पास नहीं था, तब दुर्योधन के कहने पर कर्ण ने वह शक्ति घटोत्कच पर चला दी, जिससे घटोत्कच का वध हो गया और अर्जुन अजेय हो गया। इस बात पर भगवान कृष्ण मुस्कराए भी थे और उन्होंने कहा था कि घटोत्कच की मृत्यु के बाद अब कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो अर्जुन का वध कर सके। इस प्रकार यहाँ भी श्री कृष्ण ने अर्जुन की रक्षा करके पाण्डव को महाभारत के युद्ध में विजय दिलाई।

आगे के युद्ध में जब कर्ण पाण्डव सेना का भीषण संहार कर रहा था और अर्जुन भी कर्ण को पराजित नहीं कर पा रहा था, तब कर्ण का रथ जमीन में फंस गया, तब भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को निर्देश दिया कि वह उसी समय कर्ण का वध कर दे अन्यथा कर्ण का वध करना सम्भव नहीं होगा। अर्जुन के मना करने पर भगवान श्रीकृष्ण ने अभिमन्यु वध की याद दिलाई और अर्जुन को बाण चलाने के लिए तैयार किया, तब अर्जुन ने बाण चलाकर कर्ण का वध किया।

इसके पश्चात युद्ध में जब कौरव सेना में दुर्योधन अंतिम वीर योद्धा के रूप में शेष बचा तब दुर्योधन की माँ गांधारी जो कि पतिव्रता व शिवभक्तिनी नारी थी, ने दुर्योधन को अपने सामने निर्वस्त्र आने के लिए निर्देश दिया था और गांधारी का उद्देश्य यह था कि जब वह आँखों से बंधी हुई पट्टियाँ खोलेंगी और अपनी पतिव्रता या भक्ति के प्रभाव से जब वह दुर्योधन पर दृष्टि डालेगी तब उसका शरीर वज्र का हो जाएगा और उसे युद्ध में कोई मार नहीं पाएगा। भगवान श्री कृष्ण अन्तर्यामी थे और यह बात जानते थे तब उन्होंने दुर्योधन जब स्नान करके निर्वस्त्र गांधारी कक्ष में जा रहा था, तो कृष्ण वहाँ मिले और उन्होंने दुर्योधन से कहा कि निर्वस्त्र कहाँ जा रहे हो और जब दुर्योधन ने सारी बात बताई तो कृष्ण भगवान ने कहा कि माँ के सामने निर्वस्त्र जाओगे, माँ ने वस्त्रों के लिए मना किया है तो कमर के हिस्से पर केले के पत्ते ही लपेट लो। कृष्ण भगवान के सुझाव पर दुर्योधन ने कमर के हिस्से पर केले के पत्ते लपेट लिए और माँ के सामने उपस्थित हो गया और जब गांधारी ने अपनी आँखों की पट्टी खोली और दुर्योधन पर दृष्टि डाली तो वस्त्रविहीन भाग वज्र का हो गया और शेष भाग पर केले के पत्ते लिपटे थे, वह

भाग वज्र का न होकर कमजोर रह गया। गांधारी ने इसके लिए दुर्योधन के प्रति रोष भी प्रकट किया था, परंतु योगेश्वर श्रीकृष्ण की लीला से ऐसा हुआ और जब दुर्योधन का भीम से युद्ध हुआ और भीम प्रयत्नों के बाद भी दुर्योधन को कोई हानि नहीं पहुँचा पा रहा था, उसी समय श्री कृष्ण ने भीम को इशारा करके गदा कमर के उस भाग पर मारने का इशारा किया जहाँ गांधारी की दृष्टि नहीं पड़ी थी और जो भाग कमजोर रह गया था, तब भीम ने दुर्योधन को कमर के आसपास प्रहार करके उसका वध किया।

इसके उपरांत युद्ध के पश्चात् पाण्डव लोग जब धृतराष्ट्र से मिलने गए और धृतराष्ट्र के मन की दशा समझकर **कृष्ण भगवान ने लोहे का भीम बनवाकर धृतराष्ट्र से आलिंगन कराया और धृतराष्ट्र ने उस लोहे के भीम को चूर–चूर कर दिया था – यदि भीम उस समय धृतराष्ट्र से गले मिले होते तो उनकी भी मृत्यु हो गई होती।** इस मौके पर भी भगवान श्री कृष्ण ने भीम की रक्षा की।

इस प्रकार पूरे महाभारत युद्ध में हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान के प्रयासों और लीला से ही पाण्डव युद्ध जीत पाए अन्यथा पाण्डवों का जीतना सम्भव नहीं था और यदि ऐसा नहीं होता तो धर्म और न्याय के ऊपर अधर्म और अन्याय की विजय होती। पूरे महाभारत में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की योग लीलाएँ प्रकट होती हैं और पूरा महाभारत उन्हीं की लीलाओं का परिणाम है। संजय ने प्रारम्भ में ही कह दिया था कि जहाँ श्री कृष्ण हैं, वहाँ ही विजय होगी। इस प्रकार भगवान श्री कृष्ण ने अपनी लीला चरित्रों से एक कमजोर और कम महारथियों वाली सेना को विजय दिलाई।

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥

– चाणक्य

रोगी होने पर, दुःख विपत्ति पड़ने पर, अकाल पड़ने पर, शत्रु से संकट उपस्थित होने पर, किसी मुकदमे आदि में फँस जाने पर गवाह या सहायक के रूप में राज–सभा में और मृत्यु होने पर जो श्मशान तक साथ देता है, वही बन्धु है।

जीवन का परम आनन्द योग

– जगमोहन सक्सेना, दतिया

वर्तमान भौतिकवादी युग में भले ही हमने आर्थिक, भौतिक उन्नति प्राप्त कर ली हो परंतु अमर्यादित आचरण संस्कार हीनता समाज में दिन प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर है। ऐसा कौन भाग्यशाली है जो जीवन में त्रयतापों से पीड़ित न हो व्यक्ति मन, बुद्धि, कर्म में सामन्जस्य स्थापित नहीं कर पा रहा है। अगर यह कहा जाय कि यह संसार ही दुःख रूप है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं। कोई भरपेट रोटी न मिलने से परेशान तो कोई ज्यादा फर्र जाने से परेशान, जिसके पास धन वह परेशान जिसके पास धन नहीं वह परेशान, जिसके पुत्र नहीं वह परेशान जिसके पास पुत्र वह पुत्र से परेशान, विचार करो कि सुखी कौन है?

दूषित वातावरण, दूषित खाद्य–पदार्थ, विकृत मनोरंजन फलस्वरूप विकृत सोच मानव स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। आज वैज्ञानिक युग में हम भले ही सिरमौर हो गये हों लेकिन कुछ ऐसी विकृतियाँ भी प्रदान कर दी है जिससे मानव विनाश के मार्ग पर प्रवृत हो रहा है। ऐसी स्थिति में आज हमें शारीरिक, भावनात्मक नैतिक व आध्यात्मिक विकास के लिए योग की परम आवश्यकता है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने योग की ऐसी सरल विधि, क्रियायें बतलाई हैं जिन्हें अमल में लाकर हम अपने आपको एवं अन्य लोगों को भी मार्ग दर्शन देकर जीवन को बहुत हद तक सुखमय, आनन्दमय बना सकते हैं।

राजयोग के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में अष्टांग योग के आठ अंगों का वर्णन किया है। आठों सूत्रों में से यम, नियम का पालन करना तो नितान्त आवश्यक है। तभी व्यक्ति आगे की ओर बढ़ सकता है। मन वचन कर्म से किसी प्राणी से हिंसा नहीं करना ईर्ष्या द्वेष रखना भी हिंसा है सब प्रकार के छल कपट त्याग करना चोरी से पूर्णतया त्याग से सभी रत्न प्रकट हो जाते हैं। सभी प्रकार के मैथुनों का त्याग करना, जीवन की रक्षा के अतिरिक्त अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करना, पवित्रता से रहना, सभी परिस्थितियों में प्रसन्नता बनाये रखना यानि संतोष रखना, विषमताएँ सहन करना, सभी बाधाओं से घबराये बिना आगे बढ़ना और ईश्वर के प्रति शरणागत की भावना रखना।

ये अष्टांग योग के दो सोपान हैं जिनका तो पालन करना अति आवश्यक है।

दुनिया के लोग जिन उपायों पर विचार कर रहे हैं , उनमें सार्थकता तो है परंतु परिपूर्णता, समग्रता एवं व्यापकता नहीं लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जिस पर सारे मनुष्य चल सकें जिसको प्रत्येक व्यक्ति अपना सके और जीवन में पूर्ण आनन्द, सुख शान्ति व आनन्द प्राप्त कर सकता है। वह है मात्र योग की आठ क्रियाओं में से दो – यम, नियम।

नियमित व्यायाम, नियमित भोजन, नियमित निद्रा, एवं संयमित जीवन इन चार नियमों का पालन करने से मनुष्य दीर्घजीवी बनता है। योग साधना में प्रवृत्त होने से शरीर स्वस्थ रहता है। संतोष की भावना स्वाभाविक रूप से जीवन में आती है। योग शास्त्र यह दावा करता है कि उसने ऐसे नियमों को ढूंढ निकाला है, जिनके द्वारा व्यक्ति का विकास किया जा सकता है। योग के मार्ग पर नियम पूर्वक चलने से मनुष्य में दिव्यता आ जाती है।

योग जीवनयापन का सच्चा पथ प्रदर्शक विज्ञान है। मनुष्य में नैतिकता का विकास, शारीरिक विकास, मानसिक विकास एवं आध्यात्मिक विकास योग पद्धति से सम्भव है।

मानव जीवन आपको इसलिए मिला है कि आप अपने अहंकार को नष्ट करके अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव प्राप्त कर सकें। जिससे सब कुछ जाना जाता है सब कुछ पाया जाता है उसी का नाम योग विद्या है। योग जीवन को पूर्णता प्रदान करता है। आओ आज से ही हम सभी योग मार्ग पर चलें और जीवन का परम आनन्द प्राप्त करें।

लभते सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्।
पिबच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटंछशविषाण मासादयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।

—भर्तृहरि नीति शतक

कदाचित् कोई बुद्धिमान व्यक्ति, किसी तरकीब से, रेत में से भी तेल निकाल ले, यह सम्भव हो सकता है, मृगतृष्णा से प्यासे व्यक्ति की प्यास बुझाना भी किसी तरह सम्भव हो सकता है, बहुत खोजने पर शायद खरगोश के भी सींग मिल जायें, परंतु हठ पर अड़े मूर्ख व्यक्ति के चित्त को, कोई भी व्यक्ति वश में नहीं कर सकता।

बैकुण्ठ धाम के दर्शन

श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव

"प्रस्तुत लेख ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज के ध्यानानुभव नामक पुस्तिका से लिया गया है। श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी थे और आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के परम कृपा पात्र बच्चों में से एक थे।"

–सम्पादक

एक दिन मैं दिन के लगभग दो बजे श्री प्रभु जी के पास बैठा था कि बहिन द्रोपदी कुछ प्रेम के शब्द गाने लगी। तभी श्री प्रभुजी ने अपने इस बालक की चित्त–वृत्ति को अन्तरलीन लिया तो मैं अपने भीतर अनुपम दृश्य देखने लगा। वन–पर्वत लाँघते हुए बद्री नारायण के दर्शन कराये। मन्दिर का स्वर्ण–कलश ऊपर से दिखलाकर श्री प्रभुजी ने कहा, जल्दी चलो, इधर न रुको, अभी बहुत चलना है। फिर बर्फीले पहाड़ दीखने लगे, पश्चात् चांदी का पर्वत दिखाई पड़ा। कुछ ऊपर जाने पर स्वर्णमयी नगरी दिखाई पड़ी। फिर सोने का एक पर्वत दिखाई पड़ा। मैंने श्री प्रभु जी से कहा : यहाँ पर जो सिद्ध लोग रहते हैं, कृपाकर उनका भी दर्शन कराते चलिए। श्री प्रभु जी ने कहा, चलो ! अभी बहुत चलना है। इतना कहकर उन्होंने सिर पर हाथ रखा तो उसके बाद मुझे दीखना और सुनना बन्द हो गया। कुछ देर बाद श्री प्रभु जी ने पुनः हाथ फेरा तो कोटि सूर्यों के समान प्रकाश उठा दीखने लगा। नेत्रों में उस प्रकाश को देखने की शक्ति न रही। फिर श्री प्रभु जी ने नेत्रों पर हाथ फेरा। अब जो आँख खुली तो श्री प्रभु जी विष्णु भगवान के स्वरूप में विराजमान थे उनका वाम पाद श्री लक्ष्मी जी के कर–कमलों में था। दक्षिण पैर मुड़ा हुआ था कानों में सूर्य, चन्द्रमा के समान कुण्डल लटक रहे थे। नेत्रों की शान्ति ज्योति आनन्द धारा बह रही थी। श्री प्रभु जी का गोल गुम्बदाकार मुकुट संसार के सूर्य को तेजोहीन कर रहा था उनके दक्षिण पार्श्व में चार गौर वर्ण बालक पीताम्बर धारण किये बैठे थे। उनका तेज चन्द्रमा के समान शान्तिदायी था। श्री प्रभुजी ने करूणामय नेत्रों से ऊपर को देखा। बस नाना प्रकार के शब्द आने लगे, तरह–तरह के नाद और वाद्य सुनाई देने लगे। अप्सरा गन्धर्व नृत्य गान करते हुइ दिखाई पड़े। श्री प्रभुजी अपनी प्रेम दृष्टि से सबको पुलकित कर रहे थे। प्रभु जी ने सामने दृष्टि डाली तो वीणा बजाते–बजाते चतुर्विध भक्ति के अधिकारी नारद जी दिखाई पड़े। श्री नारद जी मग्न अवस्था में थे। समीप आने पर उन्होंने श्री प्रभु जी के चरण–कमलों में दण्डवत की। श्री प्रभु जी ने कहा : कहो नारद इस समय कैसे आना हुआ। नारद जी कहने लगे,

प्रभो ! एक शंका उत्पन्न हुई है। कहो नारद! मुझे तुम्हारी शंका बहुत प्यारी लगती है। नारद ने कहा : भगवन् ! आपने अनेक कथाओं में अनेक भक्ति रहस्य भरे हैं। फिर भी यह संदेह हो रहा है कि आपके श्री चरण-कमलों का रस प्राप्त करके जिनका संसार से सम्बन्ध छूट जाता है, वे पुरुष कैसे होते हैं? और उनका साधन कौन सा है? तथा उनके क्या लक्षण हैं? श्री भगवान बोले : हे नारद, संसार में जो मनुष्य कामिनी व कांचन के पास होते हुए भी मन से उनका त्याग कर देते हैं उनको क्रोध का वेग नहीं आता। उनका हृदय और उनके नेत्र मेरे नेत्र हो जाते हैं। ऐसे पुरुषों के स्वरूप तथा वाणी को जो मनुष्य अपने मन से ध्यान द्वारा पूजन करते हैं, वह निश्चय ही मुझे प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य ऐसे भक्त के दर्शन करने मात्र से सर्व संकल्पों को त्याग देते हैं, उनको सालोक्य मोक्ष प्राप्त होता है। जिनके दर्शन व वाणी सुनने मात्र से सुध-बुध नष्ट हो जाती है, उनको सामीप्य मोक्ष प्राप्त होता है। जिनको ऐसे भक्त के दर्शन मात्र से हृदय में गुरु भाव का चित्र खिंच जाता है तथा जो दर्शन मात्र से मेरे स्वरूप का आभास करने लगते हैं उनको सायुज्य मोक्ष पद प्राप्त होता है। जो श्री गुरु चरणों में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को लीन कर देता है वह मेरे स्वरूप को धारण करके कैवल्य पद का अधिकारी होता है। यह सुनकर नारद जी ने कृतकृत्य होकर प्रणाम किया।

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः,
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये,
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः॥

(विदुरनीति)

जो क्रोध न करने वाला, ढेला-पत्थर और सुवर्ण को एक-सा समझने वाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रह से रहित, निन्दा-प्रशंसा से शून्य, प्रिय-अप्रिय का त्याग करने वाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (सन्यासी) है।

शिव परिवार लोक हिताय

– डॉ. जे. पी. शर्मा, गुरु आशीष भवन, पौंटा साहिब, (हि.प्र.)

आज सर्वत्र अशान्ति, अराजकता का समय चक्र चल रहा है। पहले विश्व में इतनी अशान्ति कभी नहीं देखी गयी। हर शासक दूसरों पर अपना आधिपत्य थोपना चाहता है। मनुष्यता जैसे रह ही नहीं गई है। इसी प्रकार राष्ट्र विभाजित हो रहे हैं क्योंकि लोगों में संकीर्णता के विचार घर बनाकर बैठ चुके हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि के कारण दूसरों की विवशता उन्हें दिखाई नहीं दे रही है। हमारे हिन्दुस्तान में ही परिवार बहुत छोटे होते जा रहे हैं। पहले एक परिवार में बाबा, दादी, माता, पिता तथा बच्चे साथ–साथ रहा करते थे, जिसे संयुक्त परिवार कहकर पुकारा जाता था। परंतु आज ऐसे परिवारों की संख्या बहुत कम रह गयी है। कारण अपने विचारों की संकीर्णता, बड़ों का अनादर, आत्म सम्मान में गिरावट से हर व्यक्ति स्वतंत्र रहना चाहता है। माता–पिता कैसे भी अपने बच्चों को पढ़ा लिखाकर इस योग्य बनाते हैं कि बड़ा होकर हमारा पुत्र बुढ़ापे में सहायक बनेगा। परंतु उनका यह सपना उस समय टूट जाता है जब उसकी शादी हो जाती है। शादी के बाद से ही वह अपने माँ बाप से मुक्त होना चाहता है तथा अपना आशियाना अलग बनाने के लिए भाग दौड़ शुरू कर देता है और अन्ततः अलग रहना शुरू कर देता है। ऐसे परिवार को आज 'न्यूक्लीयर' फैमिली कहा जाने लगा है। ऐसे परिवारों के पक्ष तथा विपक्ष में बहुत लिखा जा सकता है परंतु ऐसा करते समय धैर्य की आवश्यकता है। अगर आपने धैर्य से चिन्तन करके कदम उठाया तो परिणाम अनुकूल होंगे नहीं तो मनुष्यता मृत प्रायः नजर आयेगी। जरा सोचे जो कृत्य आज आप कर रहे हैं, वही कृत्य जब आपके साथ आपके बच्चे करेंगे तब क्या होगा?

आइये कुछ हम सदाशिव–पार्वती के परिवार की तरफ झांक कर देखें तथा शिक्षा लें कि माता पार्वती अपने परिवार को असंयमित तथा भीषण विषम परिस्थितियों में कैसे चलाती हैं:

शिव, भोले बाबा, बाबा आदम इत्यादि अनेकों नामों से पुकारे जाते हैं। भगवान शिव का बड़ा अद्भुत परिवार है। ऐसा परिवार अन्य किसी का नहीं है। ब्रह्मा जी के चार मुँह थे तो स्वयं शिव जी पंचमुखी हो गये। पुत्र गणेश को हाथी के मुखवाला, तथा दूसरे पुत्र कार्तिकेय को छः मुख वाला बना डाला। अपनी भार्या सम्पूर्ण ऐश्वर्यों वाली साक्षात् अन्नपूर्णा भवानी को बनाया। आपके शरीर पर कपड़ा तक नहीं, लंगोटी बनाई बाघ के खाल की, शरीर पर श्मशान की राख पोत डाली। नंग धड़ंग घूमने चले तो बर्फीले पहाड़ कैलाश पर वहीं अपना आशियाना बना लिया ताकि कोई उनके निवास की तरफ मुँह भी न कर सके। अपनी सवारी को रखा तो सीधा–सादा बैल, वह भी बड़े–बड़े सींगों वाला तथा बूढ़ा। अपना श्रृंगार किया तो मरघट की राख शरीर पर

लगा ली तथा माला बनायी नर–मुण्डों की, साँप और बिच्छू भी शरीर पर धारण कर लिये। अपने परिजनों की क्या विशेषता है–

कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहुत पद बाहू।।

विपुल नयन कोउ नयन विहीना, रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनु खीना।।

इन्होंने बराती बनकर एकदम तहलका ही मचा दिया था। भला ऐसा और किसी का परिवार हो सकता है क्या?

भोलेनाथ भोले ही बने रहे तथा सम्पूर्ण देव सेना का सेनापति अपने पुत्र कार्तिकेय को बना दिया तथा सम्पूर्ण देवताओं में प्रथम पूज्य का अधिकारी भी अपने बड़े पुत्र गजानन को बना डाला। सम्पूर्ण ऐश्वर्य तथा समृद्धि की देवी अपनी अर्धांगिनी पार्वती को बना लिया तथा स्वयं देवाधिदेव महादेव बन बैठे। अब और बचा ही क्या रह गया? वह स्वयं महादेव तथा पत्नि महादेवी हो गई। संसार के दुःख दूर करने के लिए विघ्नहर्ता प्रथम पूज्य श्री गणेश तथा देवसेना के सेनापति दूसरे पुत्र कहलाये जाने लगे। पुत्र वधुयें भी रिद्धि, सिद्धि तथा सृष्टि को बना लिया तथा सर्वोच्च शिखर कैलाश पर बनाया अपना निवास। सभी मोर्चों पर अपने परिवारजनों को स्थापित कर लिया। कविकुल गुरु कालिदास ने कहा है–

कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं,
वाचा हरिं वृत्रहणं स्थितेन।
अन्यांश्च देवानवलोकनेन,
सम्भावयामास त्रिशूलपाणिः।।

उन्हीं की बारात में सम्मिलित होने वाले देवताओं का उन्होंने कैसा सम्मान किया है? श्री ब्रह्मा जी आये तो केवल अपना सिर ही हिला दिया, 'आइये बैठिये' कहने तक की आवश्यकता ही नहीं समझी। भगवान श्री विष्णु जी आये तो जरा मुँह से कह दिया, आइये बैठिये, कुशल तो है? लेकिन उठकर अभिवादन तक न किया। दो कदम चलकर स्वागत कौन करे? देवराज इन्द्र आये तो केवल मुस्करा दिया। बस हो गया स्वागत। इन्द्र का अहोभाग्य कि उन्हें देखकर कम से कम मुस्कराये तो सही, यह क्या कोई कम बात है। अन्य देवता आये तो केवल मात्र उनकी तरफ तिरछी नजर करके देख लिया। बस इतने भर से हो गया स्वागत। इससे देवता लोग कृतार्थ हो गये। ऐसे ही महामहिम शिव जी को भोलेनाथ कहा जाता है। यथा –

कैसे महेश्वर हैं तन में जब क्षार लपेटि के बैल सवार हैं।
भक्तन के अभयंकर साथ भयंकर भूत–परेत अपार हैं।।
संकट में परिजात हैं आप यों औढरदान के हेतु तयार हैं।
भोले सदाशिव क्यों न बने घर भूलि जिन्हें रुचि श्वेत पहार हैं।।

अतः यह विचारणीय है कि जिनकी वेश भूषा ऐसी अद्भुत हो तथा जिनके घर सामान

इतना कम और तुच्छ हो, उनके घर में इतना ऐश्वर्य आखिर आया तो कैसे और कहाँ से? पद्माकर जी का कहना है कि यह सब गंगा महारानी की कृपा है –

लोचन असम अंग भसम चिता को लाय,
तीनो लोक नायक सो कैसे के ठहरतो।
कहँ पद्माकर विलोकि इमि ढंग जाके,
बेदहू पुरान गान कैसे अनुसरतो।
बाँधे जटाजूट बैठे परवतकूट माहि,
महाकाल कूट कहो कैसे के ठहरतो।
पीवे नित भंगै रहै प्रेतन के संगै,
ऐसे पूछतो को भंगै जो न सीस धरतो।।

परंतु बहुत से मनुष्यों की राय है कि यह सब अन्नपूर्णा देवी की कृपा का फल है–

स्वयं पंचमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ।
दिगम्बरः कथं जीवदेन्नपूर्णा न चेद् गृहे।।

भगवान भोलेनाथ के पाँच मुँह हैं, बच्चे गजानन तथा षट मुँह वाले हैं तथा पहनने को शरीर पर कपड़े तक नहीं, ऐसे में अगर अन्नपूर्णा नहीं होतीं तब अपनी इतनी भयंकर – असंयमित, विषम परिस्थितियों में गृहस्थी कैसे चलती? इस बारे में श्री शंकराचार्य के विचार सुनिये–

वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं।
श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिवहो भूषणनिधिः।
समग्रा सामग्री जगति विदितैव स्मररिपो–
र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा।।

भोले बाबा ने सवारी के लिए रखा है, बूढ़ा बैल तथा खाने को आक, धतूरा, भांग तथा जहर। रहने के लिए दिशायें। आभूषण पहनने के लिए बिच्छू–साँप, जटाओं में गंगा तथा सिर पर चन्द्रमा तथा पहनने को शमशान की राख इत्यादि। वह शुकर है माथे पर चन्द्रमा है जो उनको शीतलता देता रहता है नहीं तो माता पार्वती ठंडाई घोटते–घोटते हांफ जातीं। भला सोचो इन भीषण परिस्थितियों में भोलेनाथ की गृहस्थी माता पार्वती की समझबूझ के बिना कैसे चल पाती?

नहिं अम्बर अंग न संग सखा बहु भूतन के डरतो डरतो।
डरतो पुनि सांपन की फुसकारन भांग बटोरत ही मरतो।।

मरतो जिहि जानि न जन्म–कथा नर बाहन सों खर ना चरतो।
हंसि पारबती कहें शंकर सों हम ना बरतीं तुम्हें कौन बरतो।।

बेचारी माता पार्वती इन भीषण–विषम परिस्थितियों में अपने विषम परिवार को बड़ी युक्ति पूर्वक मुश्किल से ही संभालती हैं। क्योंकि शिव परिवार कोई सामान्य परिवार नहीं है। बच्चों की शिकायत बनी रहती है कि कार्तिकेय ने मेरे कान उमेठ दिये। कभी कार्तिकेय जी कहते हैं कि गजानन ने अपनी सूंड़ से मेरी आँखे ही गिन डालीं–

हे हेरम्ब रोदिषि कथं कर्णौ लुठत्यग्निभू:।
किं ते स्कन्द विचेष्टितं मम् पुरा संख्या कृता चक्षुषाम्।।

सवारी वाले जानवरों के लिए एक ही अस्तबल बना है जहां सारे इकट्ठे रहते हैं उनमें सदा आपस में खटपट रहा करती है तथा एक तरह से अस्तबल जानवरों का खेल का मैदान बना रहता है। यथा –

बार बार बैल को निपट ऊंचो नाद सुनि,
हुँकारत बाघ बिरझानो रसरेला में।
भूधर भनत ताकी बास पाय शोर करि,
कुत्ता कोतवाल बगानो बगमेला में।।
फुंकारत मूषक को दूषक भुजंग तासो,
जंग करिबे को झुक्यो मोर हदहेलामें।
आपस में पारषद कहत पुकारि कछु,
रारि सी मची है, त्रिपुरारि के तबेला में।।

अर्धनारीश्वर महादेव ने अपने आधे अंग की सवारी के लिए बैल रखा है तथा आधे अंग अथवा पार्वती के लिए शेर की सवारी रखी है। भला कभी बैल, तथा शेर एक साथ रह सकते हैं। वहीं पुत्र गजानन की सवारी के लिए चूहा तथा छः मुख वाले पुत्र की सवारी के लिए मोर रखा है। क्या चूहा तथा मोर इकट्ठे रह सकते हैं। वहीं अपने भैरव जी की सवारी के लिए कुत्ता दे रखा है, जो हर पल उन्हें देख–देख कर भौंकता रहता है। जरा विचार करें बैल, शेर, चूहा, मोर, कुत्ता तथा सर्प इकट्ठे अस्तबल में कैसे रहते होंगे? उनमें आपस में सामंजस्य तथा शान्ति बनाये रखने के लिए माता पार्वती को कितने प्रयत्न करने पड़ते होंगे? इतने बड़े विषम परिवार को भला कैसे चलाती होंगी? भोलेनाथ का क्या कहना, जब तक शान्ति रही, तब तक रही, जहाँ अशान्ति देखी तुरन्त समाधि लेकर बैठ गये। बाद में हालातों से जूझती रहें, भवानी माता पार्वती। महादेव अपने परिवार की समस्याओं के कारण योगी बन बैठे हैं।

आपुको बाहन बैल वाली बनिताहू को बाहन सिंघहि पेखिकैं।
चूहे को बाहन है सुत एक के दूजो मयूर के पच्छ बिसेखिकैं।।

भूषण है कवि चैन फनिन्द के बैर परे सबते सब लेखि कै।
तीनहु लोकके ईश गिरीस सु जोगी भये घर की गति देखि कै।।

अत: चिन्ता तो माता पार्वती को रहती है जो अपनी गृहस्थी चलाती है। जैसे ही गजानन मोदक खाने को मचलते हैं, उस समय अन्नपूर्णा के सामने वास्तव में संकट आ खड़ा होता है। उनकी भूख भी ऐसी जो सामने आ जाय उसे ही खा जाते है–

आप विष चाखैं भैया षटमुख राखैं, देखि,
आसन में राखैं बस बास जाको अचलै।
भूतन के छैया आस पास के रखैया और,
काली के नथैया हू के ध्यान हूँ ते न चलै।।
बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल,
भाँग औ धतूरे को पसार देत अचलै।
घर को हवाल यहै संकर को बाल कहै,
लाज रहे कैसे पूत मोदक को मचलै।।

कहते हैं कि एक बार अति सम्पन्नशीलता के अहंकार में आकर कुबेर खाने का निमंत्रण देने शिव–पार्वती के पास कैलाश गया। किसी कारण वश उन्होंने गजानन को भोजन करने के हेतु कुबेर के साथ भेज दिया। बस फिर क्या था? गणपति ठहरे लम्बोदर पेटू खाने पर टूट पड़े। उन्होंने कुबेर की रसोई में बनाई गई सब सामग्री खा डाली परंतु और खाने को लाओ, लाओ पुकारते रहे। तब वहाँ जो भी सामान रखा था उसे खाने लगे। इससे भयभीत कुबेर पुन: कैलाश गया तथा भोले नाथ को उन्होंने पूरी बात बतायी। भगवान भोलेनाथ ने कहा, कुबेर गजानन को खीर बनाकर दे दो, भूख मिट जायेगी। अत: गजानन को खीर खाने के बाद ही भूख मिटी। पर्वतराज हिमालय की पुत्री होने के कारण माता पार्वती उन सभी साधनों को भलीभांति जानती हैं जिनके माध्यम से वह इस विचित्र परिवार के प्रत्येक सदस्य की मांग पूर्ण करके सन्तोष दे सकें। अपनी गृहस्थी चलाने के लिए पुत्र वधुयें रिद्धि तथा सिद्धि को भी सहभागी बना रखा है। उनके सहयोग से ही परिवार की समुचित अर्थ व्यवस्था दिनरात चल रही है। माँग तो वहां होती है जहाँ सब सामग्री आसानी से सुलभ हो जाय। इसी कारण अपना निवास कैलाश पर्वत के शिखर पर बनाया है, जहाँ चौबीसों घण्टे चारों तरफ केवल सफेद बर्फ ही बर्फ दिखाई देती है। इसी कारण इनकी सवारियों के ठंड के मारे सारे हौसले परस्त है। सर्दी में सुस्त बने रहते हैं, इसी कारण आपस में झगड़ते नहीं है। हैं न शिव परिवार की चतुराई, जहाँ तक कोई दान मांगने वाला भी नहीं जा पाता।

ऐसा इसीलिए है, वह महामाया है, अपने परिवार की बड़ी गंभीरता से चतुराई पूर्वक निर्वहन करती है–

सपर्णामाकीर्णा कतिपयगुणैः सादरमिह,
श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु गतिरेवं विलसति।
अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः।
पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम्।।

अनेकों गुण विस्तृत सपर्णा (पत्तों सहित) लताओं का आश्रय भले ही कोई ले, परन्तु मेरे विचार से तो केवल एक अपर्णा (पार्वती जी) की सेवा करनी चाहिए जिससे घिरकर पुराना ठूँठ भी (स्थानु–शिव) मोक्ष का फल देने लगता है।

आजकल सन्तोष नाम की कोई चीज दिखाई नहीं देती, जिधर नजर डालेंगे सब तरफ असन्तोष तथा व्याकुलता ही नजर आती है। अतः सभी मानवों को शिव–पार्वती के परिवार से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए तथा भीषण–विषम परिस्थितियों का डटकर सामना करना ही यथोचित समझदारी होगी। तभी हम सदगृहस्थ बन पायेंगे तथा परिवार टूटने से बचेंगे। कहा गया है–

एकता में बल होता है तथा अकेला सहज टूट जाता है।

जय गुरुदेव, ॐ शान्ति

प्रेम, सहानुभूति, सम्मान, मधुर वचन, सक्रिय, हित, त्याग और निश्छल सत्य के व्यवहार से ही तुम किसी को अपना बना सकते हो। तुम्हारा ऐसा व्यवहार होगा तो लोग तुम्हारे लिये बड़े–से–बड़े त्याग करने–हेतु तैयार हो जायँगे। तुम्हारी लोकप्रियता मौखिक नहीं होगी। तुम्हारे लिये लोगों के हृदयों में बड़ा मधुर और प्रिय स्थान सुरक्षित हो जायेगा। तुम भी सुखी हो जाओगे और तुम्हारे सम्पर्क में जो आयेंगे, उनको भी सुख–शान्ति मिलेगी।

श्रीमद्भगवतगीता का विभिन्न महात्म्य

– बलवीर सिंह , एडवोकेट, आगरा

गीता के उपदेशों को भक्तों को सुनाने का फल

य इमं, परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशय:।।

(18/68)

जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्य युक्त गीताशास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इमम् – यहां समस्त गीता के उपदेशों के लिए तथा परां, गुहयम एवं परमं तीन विशेषण हैं जिनको परम गोपनीय एवं परम प्रेम से तथा मेरे अनुसार यही परम श्री भगवान द्वारा शास्त्र की श्रेष्ठता अथवा उपदेशों की श्रेष्ठता के लिए प्रयुक्त हुआ माना जा सकता है।

मदभक्तेषु – मेरे भक्तों से है इसमें भी मेरी राय में जो भक्त की श्रेणी के हैं अथवा जो जिज्ञासु भी हैं उनके लिए भी श्री भगवान का अभिप्राय हो सकता है क्योंकि श्री प्रभुजी तो जो उनकी ओर देखने भी लगता है उस पर भी कृपा को तत्पर रहते हैं और शनै: शनै: जिज्ञासु से भक्त या योगी की श्रेणी में उसे पहुँचाते हैं।

यहाँ जाति का बन्धन, वर्ण आदि को वे नहीं देखते अर्थात् गीता को प्रत्येक जाति व वर्णधर्म का जिज्ञासु भक्त स्वीकार कर सकता है। इसमें सन्देह ही नहीं का अर्थ है प्रतिज्ञा या निश्चय श्री भगवान की। इस प्रकार यह भी एकांतिक उपाय है।

न च तस्मान्य नुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तम:
भविता न च मे तस्मादन्य: प्रियतरोभुवि।।

च औ.र न – न तो, तस्मात् – उससे बढ़कर, मे–मेरा, प्रिय कृत्तम: अतिशय प्रियकार्य करने वाला, मनेष्येषु–मनुष्यों में, कश्चित–कोई, अस्ति – है, च– और न – न तस्मात् – उससे बढ़कर, मे – मेरा, प्रिय तर:– अत्यन्त प्यारा, भुवि– पृथ्वी में, अन्य – दूसरा, भविदा – होवेगा।

अब गीता शास्त्र के अध्ययन पाठ का माहात्म्य –

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयो:।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्ट: स्यामिति मे मति:।।

(18/70)

धर्म्यम – धर्ममय, आव यो: – हम दोनों के , सम्वादम् – सम्वाद रूप गीता शास्त्र को,

अध्यष्यते– पढ़ेगा अर्थात् नित्य पाठ करेगा, तेन – उसके द्वारा, अहम् – मैं, ज्ञानयज्ञेन – ज्ञानयज्ञ से, इष्ट पूजित, स्याम् – होऊंगा, इति मेमाति – ऐसा मेरा मत है।

अर्थात् जो पुरुष इस धर्म मय हम दोनों के सम्वाद रूप गीता शास्त्र को पढ़ेगा अर्थात् नित्य पाठ करेगा मैं उसके द्वारा भी ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊंगा – ऐसा मेरा मत है।

अब श्रवण का फल

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।। (18/71)

अनसूयः – दोष दृष्टि से रहित हुआ (इस गीता शास्त्र का) शुभान लोकान् – श्रेष्ठलोको को, प्राप्नुयात – प्राप्त होवेगा। मुक्तः – पापों से मुक्त हुआ, श्रुणयात अपि – श्रवण मात्र भी करेगा।

जो मनुष्य श्रद्धा युक्त एवं दोष दृष्टि से रहित होकर इस श्री गीता शास्त्र का श्रवण भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तकर्म करने वाले श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होगा।

गीता किसको नहीं सुनानी चाहिए –

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।

अशुश्रुषवे – बिना सुनने की इच्छा वाले के प्रति, अभ्य सूयति – निन्दा करता है या दोष दृष्टि रखता है।

तेरे हित के लिए तुझे यह गीता किसी भी काल में न तो तपरहित मनुष्य से कहना चाहिए, न भक्ति से रहित से और न बिना सुनने की इच्छा वाले से ही कहना चाहिए तथा मुझमें दोष दृष्टि या मेरी निंदा करता है उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिए।

गीता का महत्व

महाभारत के भीष्मपर्व के 43 अ. श्लोक 1,2,3,5 में गीता का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र संग्रहैः।
या स्वयं पद्मना भस्य मुख पद्माद्विनिः सृता।। (2)

अन्य शास्त्रों के संग्रह की आवश्यकता नहीं है। केवल गीता का ही भलीप्रकार पठन मनन करना चाहिए क्योंकि यह भगवान पद्मनाभ (विष्णु) के मुख से प्रगट हुई है।

सर्वशास्त्रमयीगीता सर्वदेवमयोहरिः।
सर्व तीर्थमयीगंगा सर्ववेदमयोमनुः।। (1)

गीता सर्वशास्त्र मयी है, श्री हरि सर्वदेवमय है, गंगा जीसर्व तीर्थ मयी है और

मनुसर्ववेदनम है।

गीता गंगे च गायत्री गोविदेति ह्रदिस्थिते।
चतुर्गकार संयुक्ते पुनर्जन्म न विदसे।। (3)

गीता, गंगा, गायत्री, गोविन्द ये 4 गकार जिसके ह्रदय में वसते हैं उसका पुनर्जन्म नहीं होता। श्री गीता के संदर्भ वाराह पुराण में स्वयं श्री भगवान कहते हैं –

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामिगीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीता ज्ञानमुपाश्रित्य त्रींलोकान् पाल माम्यहम्।।

अर्थात् मैं गीता के आश्रम में रहता हूँ, गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीता के ज्ञान का सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।

ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी।।
अस प्रभु ह्रदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।।
नाम निरूपन नाम जतन तें, सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें।।
(रा.च.मा. 1/23/6–8)

वे सर्वव्यापी, अविनाशी, सत्य, सदैव चेतन और आनन्द की घनराशि ब्रह्मरूप श्रीभगवान् तो हमारे ह्रदय में ही विराजमान हैं और अचल श्रद्धा–विश्वास और अनन्य प्रेम से श्रीभगवान् के नाम की महिमा और प्रभाव जानकर नाम जपने से वे कृपा करते हैं और प्रकट होकर दर्शन देते हैं।

गुन्जन

डॉ. विजय सिंह

हम संसारी प्राणियों को इस कलिकाल के कठिन ताप से छुटकारा दिलाने हेतु ही संत, योगी जनों ने अपने अन्तर्मुखता को बाणियों के सरस रस से भिगोकर बहिर्मुख गुंजन किया है। इन भजनों में, सम्प्रज्ञात की शुद्ध सतोमयी निर्झरी सास्वत रूप से झर रही है। जब भी मन व्याकुल हो इनमें गोता लगाइये और शीतलता पाइये।

मानसकार तुलसीदास, महात्मा सूरदास, योगी संत कबीर, स्वामी हरिदास, श्री नानक जी, दादूदयाल, मलूकदास आदि के वाणियों एवं काव्य सरिता में सद्गुरु भक्ति, समर्पण, वैराग्य के मणि मुक्ता सहज ही अपनी छटा बिखेरते रहते हैं। आनन्द के अवगाहन में इन महापुरुषों के प्राण बार–बार प्रेम विह्वल हो उठे हैं। अतः जब हम सामान्य जन इनका परायण करते है तो स्वयं के प्राणों में वही कम्पन गुंजायमान होकर जीवन – रस का प्रसार करने लगता है। ब्रह्म की परिभाषा 'रसौ वा सः' का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष किसी न किसी रूप में अनुभव होता है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा भगवान गणपति की वन्दना, स्वंय गणपति का साकार शब्द रूप का निर्माण, साधक के चित्त में उल्लास उजागर करता है–

गाइये गनपति जगबन्दन। संकर – सुवन भवानी नन्दन।।
सिद्धि–सदन, गजबदन, विनायक। कृपासिंधु सुंदर सब लायक।।
मोदक – प्रिय, मुद –मंगल–दाता। विद्या–बारिध बुद्धि–विधाता।
मांगत तुलसीदास कर जोरे। बसहिं रामसिय मानस मोरे।।

उपरोक्त चौपाई के पाठ से मूर्तिमंत शिव–दरबार आँखों में उजागर होने लगता है। विद्यार्थियों को उक्त का पाठ नित्यसः करना उनके मेधा–स्मृति के विकास में सहायक होगा।

एक बात स्मरणीय है कि जितने नाम–रूपात्मक देव देवियाँ है सभी उस परम तत्व के विर्भम रूप है। वह परम तत्व सद्गुरु तत्व है। 'नास्ति तत्वं गुरोः परम्'। गुरु तत्व से बड़ा कोई तत्व नहीं है। चीनी से बने चीनी के खिलौने का भिन्न–भिन्न नाम – रूप होता है। परंतु मूलतः वह चीनी ही है मिठास उसका स्वाभाविक गुण है। अतः भिन्न–भिन्न संतो के आराध्य अनेक होते हुए भी वे सभी सद्गुरु तत्व से ही निर्मित और उनका अन्त भी सद्गुरु तत्व में ही है। अतः काव्य – रस के अवगाहन में जहाँ कोई और नाम रूप में समर्पण की बात आये तो हम सभी को अपने इष्ट एवं सद्गुरु के नाम रूप की धारणा एवं मन के सहयोग से करने पर अपूर्व आनन्द का सृजन स्वतः अनभूति से आवेगा देखें –

रघुबर (प्रभुवर) तुमको मेरी लाज।

सदा सदा मैं सरन तिहारी तुमहि गरीब निवाज।।

पतित उधारन बिरद तुम्हारो स्त्रवनन सुनी आवाज।

हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज।।

अघ–खंडन दुख–भंजन जनके यही तिहारो काज।

तुलसीदास पर किरपा कीजे, भगति – दान देहु आज।।

प्रभो! यह अब आपके लिए लज्जा का विषय है, आपने मुझे अपनाया है और अभी तक तारा नहीं। मैं तो आप दीन–दुखियारों के रक्षक की शरण में सदा–सदा के लिए आन पड़ा हूँ। क्योंकि ऐसा सुना है बार–बार कि आप पतितों के उद्धार कर्ता हैं। आज एक पुरातन पतित आपकी शरण मे आया है उसे भवसागर से पार करें। क्योंकि आपका कार्य ही पापों के पहाड़ को खण्डित कर दुःखों से छुटकारा दिलाना है। आप के सिवाय और आसरा भी क्या और कहाँ है?

जाऊँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।

काको नाम पतित–पावन जग, केहि अति दीन पियारे।।

कौन देव बराइ बिरद–हित, हठि–हठि अधम उधारे।

खग, मृग, व्याध, पषान, विटप जड़, जवन कवन सुर तारे।।

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया–बिबस बिचारे।

तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे।।

साधना में एक निष्ठा का होना परम आवश्यक है। समर्पण अपने भावों का, इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषयों सहित मन का निश्छलता पूर्वक अपने आराध्य के प्रति होने पर। वे परम कल्याण धन श्री प्रभुजी सुनते हैं और भली प्रकार सम्भाल करते हैं। गुरु भक्त योगिनी सहजो बाई के प्राणों के झंकार के गुंजन को आइये हम भी अपने तन–मन–प्राण में किंचित या अधिक अनुभव करें।

हमारे गुरु पूरन दातार।

अभय दान दीनन को दीन्हें, कीन्हे भव जल पार।।

जन्म–जन्म के बंधन काटे यमको बंध निवार।

रंकहुते सो राजा कीन्हें, हरि–धन दियो अपार।।

देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, योग बतावनहार।

तन मन वचन सकल सुखदाई, हिरदै बुधि उँजियार।।

सब दुख गंजन पातक भंजन रंजन ध्यान बिचार।

सज्जन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार।।

आनन्दरूप स्वरूपमई है, लिप्त नहीं संसार।
सद्गुरु चरने सहजो केरे, नमो–नमो बारम्बार।।

परम योगिनी सहजोबाई समग्र मानव को चेतावनी देती है–

हरि हर जप ले, औसर बीतो जाय।
जो दिन गये सो फिर नहिं आवे, कर विचार मन लाय।।
या जग बाजी साच न जानो, तामें मत भरमाय।
कोई किसी का है नहिं बौरे, नाहक लियौ लगाय।।
अंत समय कोइ काम न आवे, जब जम लेहि बोलाय।
चरनदास कहैं सहजोबाई सत–संत सरनाय।।

आज सिनेमा के तर्जों की पैरोडी में गाये जा रहे भजन, राग–रागनियाँ, ताल–स्वर विहीन प्राणों को कितना मथते हैं और कितना अन्तर–जगत में प्रवेश करने–कराने में सक्षम है कहा नहीं जा सकता सब स्वानुभूति के विषय हैं।

गुंजन यह है जो हमें बाहर से भीतर की ओर बलात मोड़ दे। बुद्धि को सत्व में प्रतिष्ठित कर दे। प्राण में स्थिरता ला दे। रह–रह कर अनगूंज हिय में उठने दे। अनहद की चाह को जगा दे।

जिसका जीवन सुन्दर है, शुभ है – वही वास्तव में सुन्दर है। परन्तु जिसकी केवल बातें ही सुन्दर हैं, जीवन कलुषित है, वह पूरा कलंकी है। उसकी सुन्दर बातें वैसी ही हैं, जैसे–जहर से भरे घड़े के ऊपर का दूध अथवा मल से भरा हुआ चमकीला मटका।

प्रतिक्षण अपने को देखते रहो, मन में जरा–सा भी दोष दिखायी दे तो उसे निकालने की कोशिश करो। तुम्हें फुरसत (अवकाश) नहीं मिलनी चाहिए अपने सुधार से। जब तुम सचमुच सुधर जाओगे, तब तुम्हारे बिना बोले ही तुम्हारा जीवन न केवल जगत् को सीख देगा, बल्कि यदि उस हालत में तुम एकान्त में भी रहोगे, तो भी तुम्हारे अन्दर के सद्गुणों के सुवास से जगत् को सुख और कल्याण प्राप्त होगा।

दूसरे लोगों के साथ तुम वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम दूसरों से अपने लिये चाहते हो। सर्वत्र उनके गुणों को देखो और अभिमान छोड़कर नम्रता के साथ उन्हें ग्रहण भी करते चलो।

एकांशेन स्थितो जगत

– कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

सम्पूर्ण सृष्टि को योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने अपने एक अंश से धारण कर रखा है। योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण विभूति के अधिपति हैं। गीता के दशम अध्याय में उन समस्त विभूतियों को स्वयं उन्होंने ही अपने अनन्य भक्त, सखा के प्रति बताया है। भगवान पतंजलि के योग दर्शन में विभूति पाद नामक एक खण्ड ही है। इसमें योग के विभिन्न विभूति अर्थात् योग ऐश्वर्य के बारे में सूत्रवत् वर्णन है। यदि साधन के माध्यम से इन विभूतियों का अर्जन हो जाय, तो साधक कृत कृत्य हो जाता है। पतंजलि के विभूतिपाद में साधक को बहुत संयम की आवश्यकता होती है। क्योंकि ये विभूतियाँ साधक के लिए बाधक भी हो जाती हैं। साधक का अगला सोपान कदाचित बहुत दूर भी हो सकता है। इसलिए साधक के जीवन में सद्गुरु की आवश्यकता होती है। तुलसीदास जी ने भी कहा है कि – 'प्रभुता पाई काहिमद् पाही।' अर्थात् प्रभुता को पाकर किसको मद नहीं हो जाता है। लेकिन तुलसीदास ने भरत के लिए भगवान राम के मुख से ऐसा कहलाया कि पाठक मानस पढ़कर अपने को धन्य समझ सकता है। भगवान राम ने कहा – 'भरत न होइहि राजमद विधि हरिहर पद पाइ' अर्थात् भरत को राजमद नहीं हो सकता है। भरत जैसा साधक ही विभूतियों से बच सकता है।

गीता में अर्जुन ने भी भगवान श्री कृष्ण से पूछा भगवान आप अपने योग ऐश्वर्य को कहिये–

कथं विद्यामह योगिंस्त्वा सदा परिचिन्तयन्।
केषु–केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया।।
विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूय: कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।

अर्थात् हे योगेश्वर मैं कैसे आप का चिन्तन करूँ जिससे आपके स्वरूप को जान सकूं। यही भी बतावें कि किन–किन भावों में आपको जाना जा सकता है। आप अपनी योग शक्ति और योग विभूति को मुझसे बताइये। क्योंकि आपके अमृतमय वचन को सुनने की उत्कंठा तीव्रता से जागृत हो गयी है। नर और नारायण का यह संवाद जीव के कल्याण के लिए ही भगवान द्वारा कहा गया है। अर्जुन नर का प्रतीक अर्थात् जगत उद्धारक बन कर संसार के जीवों को भी तृप्त करवाना चाहता है। अब यह जीव (साधक) की चैतन्यता है कि वह किस प्रकार उसको ग्रहण करके आत्म कल्याण का भागी बन सकता है। इसलिए गीता का परायण हर जीव के कल्याण

का कारक हो सकता है। गीता की एक ऐसी प्रति जिसमें प्रत्येक अध्याय का महात्म्य सहित प्रकाशन हुआ है। साधक समुदाय महात्म्य की कथाओं को पढ़कर प्रत्येक अध्याय के रहस्यमयी कथा का आनन्द उठा सकता है। ये कथाएँ सामान्य के लिए प्रेरणास्पद हैं। वह भी योगारूढ़ होकर अर्जुन की तरह जिज्ञासु वृत्ति का हो जायेगा।

अर्जुन के प्रश्न करने पर भगवान ने सिद्ध साधक अर्जुन के प्रश्नों के उत्तर में कहा – अर्जुन इस दृश्य जगत में जहाँ भी शक्ति का रूप तुम्हें दिखाई देता है। वह सब मैं हूँ। भगवान ने वेद से लेकर ऋषियों, मुनियों, पुरोहितों, देवताओं, वृक्षों, सिद्धों, अश्व, ऐरावत, वज्र, गौ, सर्प, नाग, पितर, दैत्य, मृग, पक्षि, विद्या, अक्षर, समास, स्त्री, गायन, छन्द, महीना ऋतु, छल करने, जीतने वाला, सात्विक पुरुष, कवियों, गोपनीयों, ज्ञानवानों, विभिन्न वस्तुओं एवं पाण्डवों में धनंजय रूप से अपने विभूतियाँ को बताया है। ये समस्त विभूतियों से ऐसा अनुमान स्वाभाविक रूप से लगाया जा सकता है कि ईश्वर सर्वत्र अपने ऐश्वर्य के रूप में विद्यमान है। इस कलिकाल में आवश्यकता इस बात की है कि उस परमेश्वर के ऐश्वर्य को समझने का प्रयास करें। यह प्रयास भी बिना किसी साधन के सिद्ध नहीं हो सकता है। अर्जुन साधक वृत्ति से भगवान के सम्मुख युद्ध के लिए उपस्थित है। यहाँ भगवान अर्जुन के लिए गुरु रूप से उपदेशित कर संसार के जीवों का उद्धार के लिए यह बताया कि व्यक्ति अपने सामान्य स्वाभाविक कर्म को करते हुए साधन के क्षेत्र में अग्रसर होता हुआ आत्म कल्याण का भागी हो जायेगा। गीता में भगवान ने कहा भी

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदर्जितमेव वा।
तत देवावगच्छ त्वं मम तेजोऽश सम्भवम्।।
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।

अर्थात् हे अर्जुन जहाँ भी ऐश्वर्य, विभूति तथा शक्ति युक्त किसी भी वस्तु को शक्तियुक्त देखो, वह सब मेरा अंश है। फिर भी तुमको बहुत जानने से क्या प्रयोजन है। मैं उस सम्पूर्ण दृश्य जगत को अपनी योग माया में एक अंश से धारण किये हूँ इसलिए तू मेरे को ही तत्व रूप से जान जिससे तेरा कल्याण हो। तुम अपने लक्ष्य को आसानी से प्राप्त करो। हम सब कलियुगी व्यक्ति भी इसी सजग वृत्ति वाले अर्जुन की तरह कल्याण के भागी हो सकते हैं। सद्‌गुरु के उपदेश भी हमारे जीवन को तो अग्रसर बना ही रहा है। आवश्यकता है हम योगारूढ़ होकर अपने कर्त्तव्य भाव से कर्म करते रहें। जिससे साधन के उच्च सोपानों को प्राप्त करें। ईश्वर के विभिन्न रूपों को जानने एवं देखने का प्रयास करें। उसी एकांश में सृष्टि का रूप स्वयं में भी दृष्टिगोचर हो सकता है। इसलिए जो एकांश हमारे में ईश्वर का विद्यमान है उसी का आश्रय ग्रहण कर। अपने ईष्ट के प्रति अगाध श्रद्धा रखना ही हम जीवों का धर्म है।

ब्रह्म का स्वरूप - (निरंजन)

– जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

अक्षरम् ब्रह्म परमं अर्थात् ब्रह्म अक्षर है, ब्रह्म का कभी क्षरण नहीं होता है। वह कूटस्थ और निराकार है।

निराकार ब्रह्म– उपर्युक्त विवेचन से यह निर्विवाद सिद्ध है कि ब्रह्म निराकार है। निराकार का अर्थ है – नि + आकार अर्थात् जिससे करोड़ों ब्रह्माण्डों का निस्सरण हुआ है। इस बिन्दु से अतीत ब्रह्म को गीता में कहा है :

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।

अर्थात् इस ब्रह्म को पृथ्वी तत्व से किसी भी शस्त्र से काटा नहीं जा सकता है। यह ब्रह्म अदाह्य है, क्योंकि अग्नि में दाहकता इसी ब्रह्म से प्राप्त होती है। न इसे गीला किया जा सकता है तथा न इसे वायु से सुखाया जा सकता है। यह नित्य निरंतर तीनों कालों में रहने वाला है। यह ब्रह्म सर्वत्र तथा तीनों कालों में एक रूप से विराजमान है तथा यह स्थिर स्वभाव वाला है। इसमें गमनागमन की क्रिया नहीं होती है। यह स्थिर और स्थाणु होता हुआ भी सनातन, अनादि और अनन्त है। स्थूल सृष्टि से अतीत होने से यह देखने में भी नहीं आता है। इसका मन, बुद्धि आदि से चिन्तन भी नहीं किया जा सकता है। यह अविकारी है, क्योंकि इसमें चिन्मात्र भी परिवर्तन रूप विकार उत्पन्न नहीं होता है।

कविं पुराणमनुशासितार– मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः
धातारमचिन्त्यरुप–मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।

– गीता 8/9

अर्थात् यह ब्रह्म सर्वज्ञ है। सम्पूर्ण प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को जानने वाला है। यह पुराण पुरा+नव अर्थात् पुराना होते हुए भी सदा सर्वदा नवीन ही रहता है। करोड़ों ब्रह्माण्डों की नियमित रूप से संचालन क्रिया आदि इसी ब्रह्म के अनुशासन से संचालित होती है। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम तथा महान से भी महान है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों को धारण–पोषण करने वाला है। यह ज्ञान स्वरूप है। सूर्य चन्द्र आदि का प्रकाश इसी से प्रकाशित होता है।

उपासक इस निराकार ब्रह्म की उपासना 'अहम् ब्रह्मास्मि' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'सोऽहम्' आदि महावाक्यों के अर्थ की भावना करके करते है, क्योंकि शरीर को संचालित करने वाली आत्मा इसी का स्वरूप है।

निराकार साकार ब्रह्म का रूप : वह ब्रह्म निराकार होते हुए भी साकार – सगुण रूप में भी है।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति।।

13/13 गीता

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियनिविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।

13/14 गीता

वह ब्रह्म भक्तों के लिए हाथ और पैरों वाले हैं। भक्त के द्वारा अर्पित की गई वस्तु को वहां जाकर ग्रहण करता है। कोई भी प्राणी उसकी दृष्टि से ओझल नहीं है। भक्त की भावना के अनुसार जब वह उसके मस्तक पर चन्दन चढ़ाता है तो वही उसका मस्तक है तथा सर्वत्र उसका मुख है। जितने ब्रह्माण्ड हैं उन सबमें उस ब्रह्म का ऐश्वर्य विद्यमान है। दूसरा भाव यह है कि सृष्टि में जितने प्राणी हैं, उन सबके हाथ पैर मुखादि उसी ब्रह्म के हैं। वह ब्रह्म इन्द्रियों रहित होते हुए भी सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को एक साथ प्रकाशित करने वाला है। सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाला होने पर भी वह पूर्णतः आसक्ति रहित है। ब्रह्म के इसी निराकार–साकार रूप का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी किया है–

बिनु पग चलइ सुनहि बिनु काना, कर बिनु करहि करम विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु वाणी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा, ग्रहइ घ्रान बिनु देखा।।

मानस 1/118/3–4

निराकार ब्रह्म की उपासना करने के लिए साधक को सदैव यह ध्यान रखना चाहिए कि परमात्मा सब काल में सर्वत्र मेरे पास उपस्थित रहता है इसलिए मैं जो भी निन्दनीय कार्य करूँगा, तो वह ब्रह्म अपनी दिव्य आँखों से मेरे उस निन्दनीय कार्य को अवश्य देखता है तथा अपने दिव्य कानों से मेरी समस्त चर्चा को श्रवण कर लेता है। इस प्रकार की भावना से साधक के मन के मल–दोष तथा राग द्वेषादि आसानी से समाप्त हो जाते हैं तथा इस प्रकार की साधना से उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

सगुण – साकार ब्रह्म का स्वरूप – उसी अचिन्त्य, अगोचर ब्रह्म का ही विवर्त सगुण – साकार रूप है। उसी ने पांच महाभूतों का स्वरूप धारण कर लिया।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्न प्रकृतिरष्ट धा।।

गीता 7/4

अपरेय मितस्त्वन्यां प्रकृतिविद्धि मे परम्।
जीवभूता महाबाहो ययेदं धारयते जगत।।

7/5 गीता

ब्रह्म रूप भगवान श्री कृष्ण जी कहते हैं कि मेरी दो प्रकृतियाँ हैं। एक परा प्रकृति और दूसरी अपरा प्रकृति। अपरा प्रकृति में भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश। ये समष्टि रूप से पांच महाभूत हैं और व्यष्टि रूप से मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकार की मेरी अपरा प्रकृति हैं। यही उस ब्रह्म का अक्ष+रम अर्थात् आँखों को रमणीयमान करने वाला सगुण रूप है। प्राणियों के उनके कर्मानुसार अपरा प्रकृति के संघात से बने शरीरों में स्थित जीव भी मेरी ही परा प्रकृति है। इस जीव ने अपरा प्रकृति को अपना मान लिया। फलत: वह मेरा अंश जीव बन कर जन्म मरण के चक्कर में फँस गया।

यद्यपि वह ब्रह्म अशरीरी, अव्यक्त, और अचिन्त्य है, फिर भी वह व्यक्त रूप से दिखाई देता है। जिस प्रकार काष्ट में अग्नि। यद्यपि अग्नि अव्यक्त है फिर भी प्रयत्न करने से वह व्यक्त हो जाती है। इसी प्रकार अष्टधा प्रकृति ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष और स्थूल शरीर है और वह ब्रह्म ही अपने विभिन्न रूपों में प्रकट हो गया है।

इस प्रकार ब्रह्म के स्वरूप के दो भाग हैं। (1) स्थूल शरीर अर्थात् परा प्रकृति जीवात्मा (2) सूक्ष्म शरीर अर्थात् अष्टधा प्रकृति। स्थूल शरीर गौण है और सूक्ष्म शरीर ब्रह्म का मुख्य भाग है। जैसे जीवात्मा इस शरीर से भिन्न माना जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी ब्रह्माण्डों से भिन्न है। 'नतेषुने मायि'। अर्थात् समष्टि सृष्टि उसमें है, परंतु ब्रह्म सृष्टि से पृथक है। ब्रह्म अशरीरी है, परंतु वह उसी प्रकार है जिस प्रकार मानव शरीर में जीवात्मा। इस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डों में एक ब्रह्म ही व्याप्त है।

मन्त्र: परतरंनान्यत्किञ्चित अस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।

गीता 7/7

अर्थात् सृष्टि में ऐसा कोई तत्व नहीं है जिसमें ब्रह्म समाविष्ट न हो। कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड उस ब्रह्म में सूत्र में माला के मणियों के समान सम्बद्ध हैं।

अष्टधा प्रकृति ही ईश्वर के घटक हैं। जिस प्रकार हमारे शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जिनसे इन महाभूतों के सूक्ष्म स्वरूपों की अनुभूति होती है। 1. श्रवण-कान-आकाश महाभूत से सम्बन्धित है। आकाश का गुण शब्द है और कान से सुना जाता है। 2. त्वचा वायु ज्ञानेन्द्रिय से अनुभव करती है। वायु का गुण स्पर्श है और त्वचा से वायु की अनुभूति होती है। 3. नेत्र अग्नि तत्व से सम्बन्धित है। अग्नि का गुण रूप है। और रूप का ज्ञान आँख से होता है। 4. रसना जल तत्व से सम्बन्धित है। रसना से ही रस की निष्पत्ति होती है। खट्टा, मीठा, आदि षटरसों का

ज्ञान जिव्हा से होता है। 5. नासिका पृथ्वी तत्व का अंग है। पृथ्वी का गुण गंध है और नासिका गंध ग्रहण करती है। इस प्रकार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सर्वत्र व्याप्त है।

ये पांचों महाभूत यद्यपि स्थूल रूप से जान पड़ते है या दिखाई देते हैं। परन्तु उनके असली रूपों को किसी ने नहीं देखा है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांचों भूतों के गुण हैं। इन महाभूतों की अनुभूति होती है, किंतु देखा नहीं जाता है। ये पांचों महाभूत यद्यपि भिन्न प्रतीत होते हैं, वस्तुत वे भिन्न नहीं हैं। सब में सब भूत समाविष्ट हैं। यथा आकाश में अन्य चारों भूत शामिल है। पंच-पंचीकृत के अनुसार प्रत्येक भूत में अन्य चारों भूत शामिल हैं। इस प्रकार ये पांचों महाभूत पृथक-पृथक नहीं है, बल्कि एक ही है। इसी प्रकार जगत का मूल तत्व ब्रह्म ही है। ब्रह्म और जगत भिन्न नहीं है। एक ही ब्रह्म के दो रूप है - 1. व्यक्त 2. अव्यक्त।

ब्रह्म के 'एकोऽहम् बहुस्यामि' के संकल्प से जगत की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में अहंकार विद्यमान है। अहंभाव के कारण ही एक ही पृथ्वी में विभिन्न गुणों के रस हैं। अहंवृत्ति के कारण ही पृथ्वी में अनेक बीज उत्पन्न होते हैं। गेहूँ के एक बीज में अपनी अहं वृत्ति के कारण ही अनेक हो जाने की प्रवृत्ति है। इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्म ही सर्वत्र अनेक व्यक्त रूपों में प्रगट हो गया है। अतः ब्रह्म निर्गुण, निराकार होते हुए भी सगुण-साकार भी है।

सगुण-साकार ब्रह्म की उपासना करने के लिए श्रद्धा और प्रेम की अति आवश्यकता है। श्रद्धा से सब कुछ संभव है। श्रद्धा माता की भाँति भक्त की रक्षा और पालन कर्त्ता है। विश्वास कठिन से कठिन कार्य को सुगम बना देता है। तथा प्रेम हृदय का वह भाव है जिससे कठोर से कठोर व्यक्ति भी पिघल जाता है। फिर वह परमात्मा तो अत्यन्त दयालु है। उसकी अहैतुकी कृपा सदैव सब पर बरसती रहती है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। नित्याभि युक्तानां योग क्षेम वहाम्यहम्।।

(गीता 9/32)

अनन्य का तात्पर्य यह है कि भक्त के साधन और साध्य मात्र उसके आराध्यदेव ही हैं। अन्य किसी की शरण वह ग्रहण नहीं करता है। वह अनन्य होकरअपने इष्टदेव का चिंतन करता रहता है। जो सांसारिक वस्तुएं और क्रियायें उस भक्त को भगवान से विमुख करती हैं, उनको वह सर्वथा त्याग देता है। अर्थात् उस भक्त के हृदय में भौतिक पदार्थों, सांसारिक व्यक्तियों में किसी प्रकार का राग-द्वेष तथा ममता-मोह नहीं रह जाता है। भक्त की इस स्थिति को ही पूर्ण शरणागति कहते है उस भक्त का मन और बुद्धि अपने इष्टदेव ही हो जाते हैं। वह जो संकल्प करता है विचार करता है उसे भगवान का समझकर अपना कार्य-व्यवहार करता हुआ उस देव के चिंतन में सदा रत रहता है। इस प्रकार जो साधक दृढ़, निश्चय से, अनन्य भाव से भगवान का चिंतन करता है, तो उसके कल्याण की चिंता भगवान को स्वयं रहती है। भगवान उसके पथ को अति सुगम बनाकर उसको परम लक्ष्य या मोक्ष को प्राप्त करा देते हैं।

श्री गीतामृत पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी

अध्याय – 8

अर्जुन उवाच

हे केशव ! अध्यात्म तथा वह ब्रह्म कहो, क्या कहलाता।
फिर अधिभूत मुझे बतला दो, क्या अधिदैव कहा जाता ।।1।।

पुनः कौन अधियज्ञ बता दो, मानव-तन में, मधुसूदन।
कैसे तुमको देखें योगी, करते जब वे अन्त-गमन।।2।।

श्रीभगवानुवाच

मूल-भाव अध्यात्म सदा ही, ब्रह्म परम अक्षर को जान।
जगत्-मात्र का सृजन, धनंजय ! कर्म कहा जाता, मतिमान।।3।।

नश्वर सब अधिभूत कहाते, अधिदैवत वह पुरुष महा।
इस शरीर में मुझको ही तो, जाता है अधियज्ञ कहा।।4।।

अन्तकाल में मुझको ही जो, जपते-जपते मर जाता।
ध्यान मेरा जो उर में रखते, मुझमें ही वो मिल जाते।।5।।

जिसी भाव का चिन्तन करते, तजते हैं जो अपनी देह।
उसी भाव में रंगे हुए वे, मिलते उसमें निस्संदेह।।6।।

इसीलिए तुम युद्ध करो अब, भजते मुझको सभी समय।
मुझमें तन-मन अर्पित करके, मुझको पाओगे निश्चय।।7।।

सभी ओर से रोक चित्त को, करते-करते ही अभ्यास।
परम पुरुष का चिन्तन करते , वे जाते हैं उसके पास।।8।।

जो शासक, सर्वज्ञ, सनातन, अणु से छोटा जिसका रूप।
जो अचिन्त्य है, सृष्टि-विधाता, तम से परे, सूर्य-अनुरूप।।9।।

अन्तकाल में अचलचित औ भक्ति-योग-बल जो पाते।
भौं के बीच प्राण को रख, वे परम पुरुष को पा जाते।।10।।

जिसे वेदविद् अमर बताते, यति जिसमें हैं मिल जाते।
ब्रह्मचर्य जिसके हित करते, थोड़े में सब बतलाते।।11।।

रोक विषय के सब द्वारों को, अविचल अपना मन करके।
ब्रह्मरन्ध्र में प्राण रोककर, योग-क्रिया में मन धरके।।12।।

ओम्-ओम् वे लपते-जपते, मुझको करते-रहते याद।
सर्वोत्तम गति पा लेते हैं, देह-त्याग करने के बाद।।13।।

प्रतिदिन मुझे याद जो करते, चित्त सदा मुझमें देते।
नित्य-युक्त वे उत्तम योगी, मुझे सहज ही पा लेते।।14।।

परम सिद्धि को प्राप्त हुए जो, अर्जुन मुझको पा जाते।
दुःख रूप क्षण भंगुर जग में, जन्म नहीं फिर वे पाते।।15।।

पुनरागमन लोग हैं करते, ब्रह्म-लोक तक भी जाकर।
पाता नहीं जन्म फिर कोई, हे अर्जुन! मुझको पाकर।।16।।

युग सहस्त्र का एक दिवस है ब्रह्मा का, जिसको यह ज्ञात।
विदित रात भी युग सहस्त्र की, वही जानता दिन और रात।।17।।

दिन में सब अव्यक्त तत्व से व्यक्त हुआ करते हैं, तात।
तथा प्रलय होती है सबकी, अब आ जाती है फिर रात।।18।।

जन्म पुनः पा-पाकर यों ही फिर प्राणि मात्र का होता लय।
पुनरागमन दिवस में होता तथा रात्रि में पूर्ण विलय।।19।।

उस अव्यक्त तत्व से ऊपर, है तत्व सनातन एक महान।
नाश सभी का होने पर भी, सदा अमर तू उसको जान।।20।।

जो अक्षर अव्यक्त कहाता, कहते हैं यति जिसे महान।
नहीं लौटते जिसको पाकर, वह ही मेरा पावन धाम।।21।।

अटल, अनन्य भक्ति के द्वारा परम पुरुष वह होता प्राप्त।
उसके भीतर भूत-मात्र हैं, वह सारे जग में है व्याप्त।।22।।

कब मरने पर मुक्ति मिलती, कब वे लौट पुनः आते।
दोनों बात तुम्हें अब अर्जुन ! यहां अभी हैं समझाते।।23।।

अग्नि, ज्योति में, शुक्ल, दिवस में, सूर्य जभी उत्तर रहते।
ब्रह्म जाननेवाले मरकर, परब्रह्म को पालेते।।24।।

कृष्ण पक्ष औ रात अंधेरी, सूर्य जभी दक्षिण जाते।
चन्द्र-ज्योति पाकर के योगी, लौट अवनि पर हैं आते।।25।।

शुक्ल, कृष्ण हैं मार्ग सनातन, इस जग में माने जाते।
शुक्ल मार्ग से मुक्ति मिलती, लौट कृष्ण - गामी आते।।26।।

नहीं मोह में पड़ता योगी, उभय मार्ग जिसको है ज्ञात।
इसीलिए तुम सभी काल में, योग-युक्त रहना, हे तात।।27।।

यज्ञ, वेद, तप, दान आदि में, जो उत्तम फल बतलाते।
छोड़ सभी-कुछ, उसके ज्ञाता, योगी धाम परम पाते।।28।।

('श्री गीतामृत-पदावली' का अक्षर-ब्रह्म-योग नामक
आठवाँ अध्याय पूर्ण)

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था ...

- हमें जो कुछ चाहिए वह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्राय: लोप हो गया है और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को दुर्बल और छोटा बना देती है।

- अपने जीवन में मैंने जो एक श्रेष्ठतम पाठ पढ़ा, वह यह कि किसी भी कार्य के साधनों के विषय में उतना ही सावधान रहना चाहिए, जितना कि उसके लक्ष्य के विषय में। ... इस एक तत्त्व से सर्वदा बड़े-बड़े पाठ सीखता आया हूँ और मेरा यह मत है कि सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी इसी तत्त्व में है - साधनों की ओर भी उतना ही ध्यान देना आवश्यक है, जितना कि साध्य की ओर।

- अरे, मृत्यु जब अवश्यम्भावी है, तो कीट-पतंगों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना अच्छा है। इस अनित्य संसार में दो दिन अधिक जीवित रहकर भी क्या लाभ? जराजीर्ण होकर थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए भी लड़कर उसी समय मर जाना क्या अच्छा नहीं है?

SIDDHYOG Postal Regd. No. Ag. 19/2009-11

AUGUST 2011

प्रधान कार्यालय

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उपासकों का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
मैथाई (फ़तेहपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. [illegible] (विज्ञापन) का विज्ञापन
2. [illegible] (लिमिटेड)
3. [illegible] रु. 1000 प्रति [illegible] रु. 500.00 प्रति [illegible]
4. [illegible] रु. 5.50 [illegible]
5. [illegible] रु. 100/- [illegible]
6. [illegible] रु. 100/- प्रति [illegible]
7. [illegible] रु. 2/- प्रति [illegible] 25 पैसे मात्र।

स्वत्वाधिकारी :- [illegible] चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक श्री [illegible] शर्मा के लिए [illegible] आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री [illegible] योग प्रशिक्षण केन्द्र, मैथाई (फ़तेहपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14508. सम्पादक : आचार्य डा. (श्री) [illegible] शर्मा